।। श्रीमहावीराय नमः ।।

जीव-विचार विवेचन

लेखक–पू.पं.श्री रत्नसेनविजय जी म.सा.

भुवण पईवं वीरं, नमिऊण भणामि अबुहबोहत्थं ।
जीव सरूवं किंचि वि, जह भणियं पुव्व सूरीहिं ।।1 ।।

शब्दार्थ-

भुवण = तीन लोक
पईवं = प्रदीप समान
वीरं = महावीर प्रभु को
नमिऊण = नमस्कार करके
भणामि = कहता हूँ
अबुह बोहत्थं = अज्ञानी लोगों के बोध के लिए
जीव सरुवं = जीव का स्वरूप
किंचिव = कुछ
जह = जिस प्रकार
भणियं = कहा है
पुव्व सूरीहिं = पूर्वाचार्यों ने

भावार्थ-

त्रिभुवन में दीपक समान ऐसे महावीर परमात्मा को नमस्कार करके, अज्ञानी लोगों के बोध के लिए जिस प्रकार पूर्व के महान् आचार्यों ने जीव का स्वरूप कहा है, उनके अनुसार जीवों का स्वरूप कुछ कहता हूँ ।

विवेचन–

कोई भी ग्रंथकार महर्षि जब किसी ग्रंथ का प्रारंभ करते हैं, तब सर्वप्रथम मंगलाचरण, विषय निर्देश, संबंध, ग्रंथ का प्रयोजन और ग्रंथ के अधिकारी का निर्देश अवश्य करते हैं, क्योंकि इन सबकी जानकारी के अभाव में पाठक, विद्यार्थी को उस ग्रंथ के अध्ययन में रस पैदा नहीं होता है ।

- मंगलाचरण–

किसी भी प्रकार की शुभ प्रवृत्ति का प्रारंभ करने से पहले मंगल किया जाता है, क्योंकि मंगल करने से बीच मार्ग में आनेवाले विघ्नों का नाश हो जाता है और कार्य की निर्विघ्नतया समाप्ति होती है । दही, गुड़, शुभ शकुन आदि द्रव्य मंगल कहलाते हैं, उनसे विघ्नों का नाश होगा ही ऐसी कोई गारंटी नहीं है, परंतु प्रभु का नामस्मरण, प्रभु को नमस्कार यह भाव मंगल पैदा करता है, जो अवश्य ही विघ्नों का नाश करता है ।

ग्रंथकार महर्षि वादिवेताल शांतिसूरिजी म. भी सर्वप्रथम 'त्रिभुवन में दीपक समान महावीर प्रभु को नमस्कार करके' इस पद द्वारा प्रभु को नमस्कार रूप मंगलाचरण कर रहे हैं । प्रभु को नमस्कार यह भावमंगल है, जो अवश्य ही विघ्नों का नाश करता है ।

यहाँ महावीर प्रभु को दीपक की उपमा दी है, क्योंकि दीपक को कहीं भी आसानी से ले जाया जा सकता है, प्रभु का ज्ञान भी दीपक के समान है ।

जिस प्रकार दीपक बाहर के अंधकार को दूर करता है, उसी प्रकार प्रभु हमारे भीतर रहें अज्ञान व मोहरूपी अंधकार को दूर करते हैं ।

केवलज्ञान की प्राप्ति के द्वारा प्रभु के भीतर रहा अज्ञान अंधकार तो दूर हुआ ही, परंतु समवसरण में बैठकर धर्मदेशना देकर प्रभु जगत् के जीवों के अज्ञान अंधकार को भी दूर करते हैं ।

ग्रंथ के प्रारंभ में मंगलाचरण यह शिष्ट पुरुषों का आचार है । आचार की यह परंपरा शिष्य-परंपरा में भी बनी रहे, इसी उद्देश्य से ग्रंथकार भी ग्रंथ के प्रारंभ में मंगलाचरण करते हैं ।

ग्रंथ के प्रारंभ में मंगलाचरण करने से ग्रंथकर्ता, ग्रंथ पढ़ने व पढ़ाने वाले के भी विघ्नों का नाश होता है ।

विषय निर्देश–

"जीवों का यतकिंचित् स्वरूप" इस पद के द्वारा प्रस्तुत ग्रंथ के विषय Subject का निर्देश किया है अर्थात् इस ग्रंथ में जीव के यथार्थ-स्वरूप का वर्णन किया जाएगा ।

संबंध–

ग्रंथकार महर्षि प्रकरण ग्रंथ की रचना स्वेच्छानुसार नहीं कर रहे हैं, बल्कि भूतकाल में हुए पूर्वाचार्य महर्षियों ने जिस प्रकार जीव के स्वरूप का वर्णन किया है, उसी के अनुसार "यहाँ मैं जीव का स्वरूप समझाऊंगा ।" इस प्रकार कहकर उन्होंने पूर्व महर्षियों के साथ गुरु-परंपरा का संबंध बतलाया है ।

अन्य प्रकार से भी संबंध जोड़ सकते हैं । जैसे जीव का स्वरूप वाच्य है और प्रस्तुत ग्रंथ के शब्द जीव स्वरूप के वाचक हैं, अतः वाच्य-वाचक संबंध हुआ ।

जीव स्वरूप का ज्ञान उपेय है और प्रस्तुत ग्रंथ उस स्वरूप को जानने का उपाय है ।

प्रयोजन-

ग्रंथ की रचना के उद्देश्य को प्रयोजन कहते हैं । प्रस्तुत ग्रंथ की रचना का मुख्य उद्देश्य अज्ञानी जीवों को जीव के स्वरूप का बोध कराना है ।

प्रयोजन दो प्रकार का होता है - अनंतर और परंपर, प्रस्तुत ग्रंथ का अनंतर प्रयोजन पाठकों को जीव तत्त्व विषयक ज्ञान कराना है, जबकि परंपरा प्रयोजन मोक्ष प्राप्ति है ।

ग्रंथकार महर्षि उपदेश देकर कर्म निर्जरा करते हैं, जिसके फल स्वरूप वे भी अल्प भवों में कर्म के बंधन से मुक्त होकर शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करते हैं ।

प्रस्तुत ग्रंथ के अध्ययन से श्रोता को भी सत्य तत्त्व का बोध होता है, जिसके फलस्वरूप वह उपादेय में प्रवृत्ति और हेय से निवृत्ति करता है, इस आराधना के फल स्वरूप वह भी अल्पभवों में भव के बंधन से मुक्त बनता है ।

5- अधिकारी-

धर्म का उपदेश हमेशा योग्य व्यक्तियों को ही दिया जाता है, क्योंकि अयोग्य व्यक्ति को दिया गया उपदेश तो लाभ के बदले नुकसान ही करता है । जो व्यक्ति आत्महित चाहता है और जो जीव तत्त्व को जानता नहीं है, ऐसी अज्ञानी आत्मा इस सूत्र को पढ़ने की अधिकारी है ।

संसारितस-थबुत्ता, संसारितस-थबुध संसारी ।
पुढवी-जल-जलण-वाउ, वणस्सइ-थावरा नेया ।।2।।

शब्दार्थ–
जीवा = जीव
मुत्ता = मुक्त
संसारिणो = संसारी
य = तथा
तस = त्रस
थावरा = स्थावर
संसारी = संसारी
पुढवी = पृथ्वी
जल = पानी
जलण = आग्नि
वाउ = वायु
वणस्सइ = वनस्पति
थावरा = स्थावर
नेया = जानने चाहिए ।

भावार्थ–

जीवों के मुख्य दो भेद हैं–

1. मुक्त और 2. संसारी ।

संसारी जीवों के दो भेद हैं–

1.त्रस और 2. स्थावर ।

स्थावर जीवों के पाँच भेद हैं–

1. पृथ्वी, 2. जल, 3. अग्नि,

4. वायु और 5. वनस्पति ।

विवेचन–

"जीव विचार" प्रकरण की रचना का मुख्य उद्देश्य श्रोताओं को संसारी जीवों के भेद-प्रभेद का परिचय कराना है । जीवों के यथार्थ स्वरूप को जानने वाला ही आसानी से जीवरक्षा कर सकता है, अतः प्रारंभ में जीवों के "मुक्त और संसारी" दो भेद बतलाकर समग्र प्रकरण में संसारी जीवों के स्वरूप का वर्णन किया है ।

मुक्त अर्थात् मोक्षगत् आत्माएँ । कर्म के बंधन से सर्वथा मुक्त बनी आत्मा को मुक्तात्मा कहते हैं । मुक्त बनी आत्मा जन्म-जरा और मृत्यु के बंधन से सर्वथा रहित होती है । आत्मा के संसार की मुख्य जड़ कर्म है और कर्म का मुख्य आधार राग और द्वेष है । राग-द्वेष से मुक्त बनी आत्मा कर्म से मुक्त बनती है और कर्म से मुक्त बनी आत्मा अशरीरी होती है ।

सभी सिद्ध भगवंत स्वरूप से एक समान होते हैं । जो कुछ भेद है- वह सब संसारी जीवों में है, अतः आगे संसारी जीवों के भेद-प्रभेद बतलाते हैं ।

संसारी जीवों के मुख्य दो भेद हैं –

1. त्रस और 2. स्थावर ।

त्रस जीव – जो जीव सुख-दुःख में अपनी इच्छानुसार गमनागमन कर सकते हैं, वे त्रस जीव कहलाते हैं । यद्यपि तेउकाय और वायुकाय को भी गति त्रस कहा गया है, परंतु वह सिर्फ उनमें होनेवाली बाह्य गति के कारण है, स्वरूप से तो स्थावर ही हैं, क्योंकि उनमें जो गति है, वह उनकी इच्छा के अनुसार नहीं है ।

💎**पृथ्वीकाय के भेद**💎

फलिह मणि रयण विद्दुम-हिंगुल-हरियाल-मणसिल रसिंदा ।
कणगाइ धाऊ सेढी वन्निय अरणेट्टय-पलेवा ।।13।।

अब्भय तूरी ऊसं मट्टीपाहाण जाईओ णेगा ।
सोवीरंजण लूणाइ-पुढवी भेयाइ इच्चाइ ।।4।।

शब्दार्थ–

फलिह = स्फटिक
मणि = चंद्रकांत मणि
रयण = रत्न
विद्दुम = मूंगा
हिंगुल = हिंगुल
हरियाल = हरताल
मणसिल = मैनसिल
रसिंदा = पारा
कणगाइ = सोना आदि
धाऊ = धातु
सेढी = खटिका
वन्निय = लालमिट्टी

अरणेट्टय = सफेद मिट्टी
पलेवा = पलेवक
अब्भय = अभ्रक
तूरी = तेजंतूरी
ऊसं = ऊसर भूमि
मट्टी पाहाण = मिट्टी और पत्थर
अणेगा = अनेक
जाइओ = जातियाँ
सोवीरंजन = सुरमा
लुणाइ = नमक
इच्चाइ = इत्यादि

भावार्थ-

स्फटिक मणि, रत्न, परवाल, हिंगुल, हरताल, पारा, सोना आदि धातुएँ, खड़िया, रमची, पत्थरों से मिली सफेद मिट्टी, पलेवक, अबरक तेजंतूरी, क्षार मिट्टी और पत्थर की अनेक जातियाँ, सुरमा, नमक इत्यादि पृथ्वीकाय के भेद हैं ।

विवेचन-

इन दो गाथाओं में पृथ्वीकाय के जीवों के कुछ नाम बतलाएं हैं । पृथ्वीकाय के इन भेदों को जानने से पता चलता है कि आज अधिकांश लोगों को पृथ्वीकाय के कलेवरों के संग्रहों में ही ज्यादा रस है । यद्यपि कोई भी इंसान किसी मुर्दे को अपने घर में रखना नहीं चाहता है, जबकि सोने, चाँदी, रत्न आदि रूप पृथ्वीकाय के कलेवरों के संग्रह में ही उसे आनंद आता है ।

पृथ्वीकाय के जीवों के कुछ नाम इस प्रकार हैं–

1- स्फटिक – जिसके आरपार Transparent देख सकते हैं, ऐसे कीमती पत्थर को स्फटिक कहते हैं । अंग्रेजी में इसे Crystle कहते हैं । मूर्ति अथवा सजावट की वस्तुएँ बनाने में इसका उपयोग होता है । पहले स्फटिक को घिसकर उसमें से चश्मे के काँच बनाए जाते थे ।

2- मणि– चिंतामणि जैसे उत्तम रत्न और मोती समुद्र में से प्राप्त होते हैं, फिर भी वे पृथ्वीकाय रूप ही हैं । इसकी अनेक जातियाँ हैं ।

3- रत्न– खान में से निकलने वाले कीमती व चमकते पत्थर रत्न कहलाते हैं । हीरा, माणेक, पन्ना, नीलम, कर्केतन तथा अरिष्ट आदि रत्नों के ही प्रकार हैं ।

4- विद्रुम–समुद्र में से मिलता है । गुलाबी लाल रंग का पत्थर होता है । आयुर्वेद में औषध के रूप में इस पत्थर की भस्म (प्रवाल पिष्टि) का उपयोग होता है ।

5- हिंगुल–अंदर पारा होने से कुछ वजनदार लाल रंग का यह हिंगुल आता है । पहले औरतें सौभाग्यसूचक गोल तिलक करने में इसका उपयोग करती थी । चित्रकला में भी इसकी स्याही का उपयोग होता था ।

6- हरताल– खान से निकलने वाली पीली मिट्टी । प्राचीन समय में लिखे हुए अक्षरों को मिटाने में इसका उपयोग होता था । कई औषधियों में भी इसका उपयोग किया जाता है ।

7- मनशील– यह भी हरताल की तरह जहरीला पदार्थ होता है और इसका उपयोग कई औषधियों में होता है ।

8- पारा– खान में से निकलने वाला यह एक प्रवाही पदार्थ है । बुखार मापने के लिए थर्मामीटर में इसी का उपयोग किया जाता है । अंग्रेजी में इसे Mercury (मर्क्युरी) कहते हैं । तांबे व पीतल के आभूषणों पर सोने का गिलेट (चमक) करने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है । कांच व मर्क्युरी ट्यूब लाइट आदि में भी इसका उपयोग होता है ।

9- धातुएँ – सोना, चाँदी, तांबा, रांगा, सीसा, जस्ता तथा लोहा पीतल, कांसा तथा जर्मन सिल्वर आदि सभी धातुएँ भी पृथ्वीकाय स्वरूप हैं । खान में मिट्टी के साथ ये धातुएँ होती हैं । खान में से बाहर निकालकर अग्नि व तेजाब द्वारा उन्हें शुद्ध किया जाता है । ये धातुएँ मिट्टी के साथ हों तब पृथ्वीकाय रूप और अग्नि में पिघलने पर अग्निकाय रूप व वापस जम जाने पर अचित्त हो जाती है ।

10. खडी– चूने से मिलता-जुलता यह पदार्थ है । मकान की सफेदी में इसका उपयोग होता था । ब्लेक बोर्ड पर लिखने के लिए चाॅक भी इसी से बनती है ।

11. हरमची (वर्णिक)– गुजराती में इसे रमची कहते हैं । कुंभकार मिट्टी के घड़े, खिलौने आदि के ऊपर रंग चढ़ाने के लिए इस मिट्टी का उपयोग करता है । यह भी पृथ्वीकाय स्वरूप हैं ।

12. अरणेट्टय– यह भी कोमल पत्थर की जाति है ।

13-. पलेवक– काले रंग के भारी और चिकने पत्थर की यह जाति है । इस पाषाण में भगवान की प्रतिमाएँ बनती हैं । इस पाषाण में सूक्ष्म कोतरणी हो सकती है ।

14. अभ्रक– अलग-अलग पाँच रंग के चमकीले होते है, खान में से निकलते हैं ।

15. तेजंतूरी– प्राचीन धातु रसायनवादियों की यह मान्यता थी कि तेजंतूरी के संसर्ग से लोहे का रस सोना बन जाता है ।

तुरी का अर्थ फिटकरी भी होता है, पानी को शुद्ध करने के लिए, औषध प्रयोग में और वस्त्रों को रंगने में इसका उपयोग किया जाता है ।

16. खार साबु, पापड़ आदि बनाने में इसका उपयोग होता है । साजीखारा भी इसी प्रकार का है । ईनो फ्रूट साल्ट में भी इसी खार खा उपयोग होता है । इस खार के फैलने से भूमि बिन उपजाऊ या बंजर बन जाती है ।

17. मिट्टी– देश-विदेश में मिलनेवाली सभी प्रकार की मुट्ठियाँ भी पृथ्वीकाय रूप ही हैं । मिट्टी के मुख्य पाँच रंग हैं - सफेद, पीली, लाल, हरी और काली मिट्टी ।

18. पत्थर– कठोर, मुलायम, चिकना,उबड़-खाबड़, हल्का व भारी ऐसे अनेक गुणधर्म वाले अनेक पत्थर होते हैं, वे सभी पृथ्वीकाय स्वरूप हैं । ग्रेनाइट, स्टोन, मार्बल आदि सभी पत्थरों की जातियाँ पृथ्वीकाय रूप हैं ।

सौवीर-अंजन – सिंधु सौवीर अर्थात् अफगानिस्तान, पाकिस्तान व कच्छ का रणप्रदेश । इस देश में प्राप्त एक पदार्थ जो आँख में आँजने के काम आता है ।

सूक्ष्म बुद्धि से पृथ्वीकाय के स्वरूप को अच्छी तरह से समझना चाहिए । भूमि को खोदने पर जो मिट्टी निकलती है, वह सचित्त होती है । खान में से निकलने वाला पत्थर सचित्त होता है । सूर्य का ताप, बाहर की गर्मी व गर्म हवा आदि के वातावरण से वह पृथ्वी अचित्त हो जाती है ।

पृथ्वीकाय के जीवों का शरीर बहुत ही सूक्ष्म होता है । सभी स्त्रियों में अधिक शक्तिशाली ऐसी चक्रवर्ती की पट्टरानी वज्ररत्न की घंट्टी में कच्चे नमक को छह मास तक पीसे तो भी नमक के कई जीवों को घंट्टी के पाट का स्पर्श भी नहीं हुआ होता है ।

पृथ्वीकाय का आश्रय करके अपकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय आदि अनेक जीव रहे होते हैं, अतः भूमि को खोदने से, खेती करने से, पर्वत को तोड़ने से, पृथ्वीकाय के साथ अन्य असंख्य अनंत जीवों का भी नाश हो जाता है ।

पृथ्वीकाय के जीवों के स्वरूप को अच्छी तरह से जानकर उन जीवों के रक्षण के लिए अपना योग्य प्रयत्न होना चाहिए ।

◆◆— पृथ्वीकाय —◆◆

तीन भुवन में मुख्य 8 पृथ्वियाँ हैं -

1.रत्नप्रभा– इसकी मोटाई 1,80,000 योजन एवं चौड़ाई एक राजलोक प्रमाण है ।

2. शर्कराप्रभा –इसकी मोटाई 1,32,000 योजन एवं चौड़ाई दो राजलोक प्रमाण है ।

3. वालुका प्रभा –इसकी मोटाई 1,28,000 योजन एवं चौड़ाई तीन राजलोक प्रमाण है ।

4. पंकप्रभा–इसकी मोटाई 1,20,000 योजन एवं चौड़ाई चार राजलोक प्रमाण है ।

5. धूम्रप्रभा –इसकी मोटाई 1,18,000 योजन एवं चौड़ाई पाँच राजलोक प्रमाण है ।

6- तमःप्रभा– इसकी मोटाई 1,16,000 योजन एवं चौड़ाई छः राजलोक प्रमाण है ।

7- महातमः प्रभा– इसकी मोटाई 1,08,000 योजन एवं चौड़ाई सात राजलोक प्रमाण है ।

8- सिद्धशिला– यह पृथ्वी 45 लाख योजन चौड़ी (गोलाकार) है बीच में 8 योजन मोटी व किनारे पर मक्खी की पाँख की तरह पतली है । अनुत्तर देव विमान से 12 योजन ऊपर आकाश में रही है ।

ये सभी पृथ्वियाँ सचित्त पृथ्वीकाय रूप हैं । इनमें बादर पर्याप्त-अपर्याप्त पृथ्वीकाय के जीव होते हैं । इन पृथ्वियों में समय-समय में असंख्य जीव मरते हैं और पैदा होते हैं ।

इसके सिवाय जगत् में जितनी पत्थर, रत्न श धातु की खानें हैं, जितने पहाड़ हैं, वे सब सचित्त बादर पृथ्वीकाय रूप हैं । समुद्र, तालाब, नदी, कुएँ में रही मिट्टी, कंकड़, पत्थर, देवों के विमान, अलंकार आदि बादर पृथ्वीकाय रूप हैं ।

पृथ्वीकाय के आयुष्य का बंध

पृथ्वीकाय स्वरूप सोना, चाँदी, रत्न आदि में तीव्र राग भाव हो, मकान की टाइल्स, संगमरमर की दीवारें आदि देखकर खुश होने से, उनमें तीव्र राग भाव करने से पृथ्वीकाय के योग्य आयुष्य का बंध होता है ।

भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और प्रथम दो वैमिनिक के देवता भी रत्न आदि की आसक्ति के कारण मरकर पृथ्वीकाय में पैदा हो जाते हैं तो मनुष्य मरकर पृथ्वीकाय में जाय, इसमें क्या आश्चर्य है ?

पृथ्वीकाय के कुल जीव असंख्याता हैं । बादर पृथ्वीकाय के एक कण में जितने जीव हैं, वे सातों नारकों के जीवों से भी असंख्य गुणे अधिक हैं अथवा चारों निकाय के देवताओं से भी असंख्य गुणे अधिक हैं ।

जीव संख्या

एक आँवले प्रमाण पृथ्वीकाय में जितने जीव हैं, वे कबूतर जितना अपना शरीर बना दें तो एक लाख योजन प्रमाण का जम्बूद्वीपभी छोटा पड़ जाता है ।

पृथ्वीकाय जीवों की हिंसा

- खेत में हल चलाने से ।
- घोड़े-हाथी पशुओं के चलने से ।
- पर्वत आदि पर आग लगने से ।
- ईंट आदि को आग में पकाने से ।
- पानी आदि के संयोग से ।

~~~~~~~~~~~~~~~~~~
~~~~~~~~~~~~~~~~~~

🍁 अप्काय जीवों के भेद 🍁

भोमंतरिक्खमुदगं ओसा हिम करग हरितणु महिया।
हुंति घणोदहिमाइ भेयाणेगा य आउस्स।।5।।

🔥शब्दार्थ-

भोमं = भूमि संबंधी
अंतरिक्खं = आकाश का
उदगं = पानी
ओसा = ओस
हिम = बर्फ
करग = ओले
हरितणु = वनस्पति पर फूटकर निकला पानी
महिया = कोहरा अथवा वर्षा की छोटी-छोटी जल बूंदे
घनोदहि = घनोदधि
माइ आइ = आदि
भेया = भेद
अणेगा = अनेक प्रकार के
आउस्स = अप्काय के
हुंति = हैं।

🔥भावार्थ-

भूमि का पानी, आकाश का पानी, ओस, बर्फ, ओले, हरी वनस्पति पर फूटकर निकला हुआ पानी, बादलों से गिरने वाले छोटे-छोटे जल कण, कोहरा तथा घनोदधि आदि अप्काय के अनेक भेद हैं।

🔥विवेचन-

यद्यपि सभी प्रकार के पानी में अप्काय के जीव होते हैं, फिर भी बाह्य आकार आदि की दृष्टि से अप्काय जीवों के अनेक प्रकार बतलाएं हैं।

🔸 भूमि संबंधी जल - भूमि संबंधी पानी को भौम जल कहते हैं। कुएं, तालाब, बावड़ी, नदी, झरना, स्त्रोत, कुंड आदि में जमीन में से जो सिराएँ फूट निकलती हैं उसे भौम जल या भूमि संबंधी पानी कहते हैं। हैण्डपम्प से भी जो पानी जमीन में से बाहर आता है, वह भी भूमि संबंधी जल कहलाता है।

🔸 आकाश (अंतरिक्ष) जल - Rainwater वर्षा ऋतु में आकाश में से बादलों से जो पानी बरसता है, उसे आकाश जल कहते हैं। भाप बनकर जो पानी बादल के रूप में बदलता है और फिर वो ही जल वर्षा के रूप में बरसता है, उसे अंतरिक्ष जल कहते हैं।

- ओस का पानी Dew - सर्दी के दिनों में कई बार सूर्योदय के आसपास समय में आकाश से सूक्ष्म जलकण बरसते हैं, जिससे वातावरण आर्द्र बन जाता है। उसे ओस कहते हैं। यह ओस भी अप्काय स्वरूप है। सूर्य के ताप और पवन से ये ओस बिंदु सूख जाते है।

- बर्फ Ice - बर्फ बी अप्काय के जीवों का ही शरीर है। कच्चे पानी की प्रत्येक बूंद में अप्काय के असंख्य जीव रहते है तो बर्फ के प्रत्येक कण में भी अप्काय के असंख्य जीव है।

पानी को गर्म करके या अन्य-अन्य वस्तुओं के मिश्रण द्वारा उसे अचित्त किया जा सकता है, जबकि बर्फ हमेशा सचित्त ही रहता है। अतः उसके भक्षण का निषेध किया गया है।

पानी की अपेक्षा बर्फ में अप्काय के जीव अतिघनत्व करके रहे हुए हैं, अतः पानी की अपेक्षा बर्फ में अत्यधिक हिंसा है।

गृहस्थ को जीवन निर्वाह के लिए पानी अनिवार्य है, परंतु बर्फ अनिवार्य नहीं है, अतः बर्फ अभक्ष्य माना गया है।

आइस्क्रीम व कुल्फी जैसे जमे हुए पदार्थ भी बर्फ की तरह अभक्ष्य माने गए हैं।

जीवों की उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं। ये योनियाँ तीन प्रकार की होती हैं - शीत, उष्ण, शीतोष्ण।

शीत योनि वाले अन्य बेइन्द्रिय आदि जीवों के लिए पानी स्वयं योनि का काम करता है। पानी स्वयं जीव स्वरूप तो है ही, परंतु पानी का आश्रय करके भी अनेक जीव पानी में पैदा होते हैं। अतः पानी की हिंसा में सिर्फ अप्काय की ही हिंसा नहीं है, बल्कि उसके आश्रित रहे हुए अन्य त्रस जीवों की भी हिंसा रही हुई है।

पानी की तरह बर्फ का आश्रय करके भी अन्य त्रस जीव रहे होते हैं, अतः बर्फ का अवश्य त्याग करना चाहिए।

- करा Ice Ball - कभी-कभी वर्षाऋतु में बर्फ के गोलाकार टुकड़े की तरह, पत्थर की तरह अत्यंत कठोर टुकड़े गिरते हैं जिनको करा कहते हैं। ये भी अप्काय स्वरूप हैं।

- हरितणु - कई बार आर्द्र वातावरण में वनस्पति के पत्ते, फूल, फल आदि पर जलबिंदु दिखाई देते हैं। वह भी अप्काय स्वरूप है।

- कोहरा Fog - सर्दी के दिनों में कई बार बाहर के वातावरण में कोहरा Fog छा जाता है। गुजराती में इसे 'धुम्मस' कहते हैं। ठंडे प्रदेशों में कई बार दिन में यह कोहरा छा जाता है, इस वातावरण में बाहर कुछ दिखता भी नहीं है। ऐसे वातावरण में वाहनों को भी धीमी गति से चलाया जाता है, अन्यथा Accident का खतरा रहता है।

यह कोहरे का वातावरण भी जैनदृष्टि से संपूर्ण अप्कायमय है, इसी कारण इस वातावरण में साधु जी-साध्वी जी के लिए विहार निषेध है, यावत् इधर-उधर गमनागमन का भी निषेध होता है। उन

जीवों की रक्षा के लिए कामली ओढकर एक ही जगह बैठ जाने का विधान है। इसके पीछे भी अप्काय के उन जीवों की रक्षा का ही ध्येय है।

🍁 कामली काल - जैन आगमों में साधु-साध्वी व पौषध व्रतधारियों के लिए कामली काल का विधान है। रात्रि में, सूर्योदय के बाद कुछ समय तक एवं सूर्यास्त के कुछ समय पहले के काल को कामली काल कहते हैं। उस समय चारों ओर का वातावरण अप्कायमय होता है। चातुर्मास में सूर्यास्त पूर्व छह घड़ी का और सूर्योदय बाद छह घड़ी का काल, कार्तिक चातुर्मास में सूर्यास्त पूर्व चार घड़ी व सूर्योदय बाद चार घड़ी एवं फाल्गुन चातुर्मास में सूर्यास्त पूर्व दो घड़ी व सूर्योदय बाद दो घड़ी के काल को कामली काल कहते हैं। इस पीरियड में साधु-साध्वीजी को खुले आकाश में बाहर जाने का निषेध है, अनिवार्य कारणवश जाना पड़े तो उन्हें गर्म कामली ओढ़कर जाने का विधान है। इसके पीछे उन जीवों की रक्षा का ही ध्येय है। अपने शरीर की उष्णता का स्पर्श होने पर वे जीव मर जाते हैं, अतः उनकी रक्षा के लिए ऊनी वस्त्र का विधान है। ऊनी वस्त्र धारण न करें तो अपने शरीर की उष्णता से वे जीव तत्काल मर जाते हैं। अतः ऊनी कामली के पीछे अप्काय रक्षा का ही ध्येय है।

🍁 घनोदधि - अधोलोक में रही नरक पृथ्वियाँ और ऊपर रहे सभी विमान घनोदधि, घनवात और तनवात पर टिके हुए हैं। घन अर्थात् गाढ़, जमा हुआ उदधि अर्थात् पानी का संग्रह यह घनोदधि भी अप्काय स्वरूप है। उसमें प्रतिसमय अप्काय के असंख्य जीव पैदा होते हैं और अपना आयुष्य पूर्णकर मरते रहते हैं।

अप्काय जीवों के रक्षण के लिए ही साधु-जीवन में सचित्त जल के स्पर्श का भी सर्वथा निषेध है।

जीवन जीने के लिए अनिवार्य ऐसा पानी भी सचित्त नहीं लेते हैं, बल्कि साधु-साध्वीजी हमेशा अचित्त जल का ही उपयोग करते हैं।

💧 पानी में जीव सिद्धि 💧

सर्वज्ञ सर्वदर्शी तारक तीर्थंकर परमात्मा ने अपने केवलज्ञान के बल से प्रत्यक्ष देखकर कहा है कि पानी की एक बूँद में असंख्य जीव हैं।

जीव के गुण धर्म पानी में भी देखने को मिलते हैं।

मनुष्य, हाथी या पशु का गर्भ प्रारंभ प्रवाही कलल रूप में ही होता है। अंडे में रहा प्रवाही पदार्थ ही बच्चे के रूप में तैयार होता है। अतः जिस प्रकार उस प्रवाही पदार्थ में सचेतनता रही हुई है, उसी प्रकार पानी में भी सचेतनता है।

सभी प्रवाही पदार्थों में सचेतनता है, ऐसा भी नहीं है। दूध व मूत्र प्रवाही पदार्थ होने पर भी वे जड़ हैं, परंतु उनकी उत्पत्ति भी जीव को ही आभारी है।

बादलों के परस्पर टकराने से जल की उत्पत्ति होती है। पानी बाहर से ठंडा होता है, परंतु कभी-कभी उसमें उष्ण स्पर्श भी होता है।

ठंडी में वातावरण में बाहर ठंडी होती है फिर भी मनुष्य के शरीर में उष्णता हो सकती है। ठंडी में भी मुंह में से वाष्प निकलती है।

पानी स्वयं ठंडा होने पर भी ठंडी के दिनों में कुएं आदि के पानी में से वाष्प निकलती हुई दिखाई देती है। शरीर की उष्णता बिना यह भाप नहीं निकल सकती।

पानी में भी श्वासोच्छवास की प्रक्रिया होती है, स्वच्छ वायु नहीं मिलने पर वह भी सड़ने लगता है, उसमें दुर्गंध पैदा हो जाती है।

गर्म पानी में हिंसा अहिंसा

जैन साधु-साध्वी जी के जीवन में जिन्दगी भर के लिए कच्चे पानी, अप्काय की हिंसा का त्याग होता है। वे पीने के लिए, शरीर की अशुद्धि निवारण एवं वस्त्रों का काप निकालने में भी अचित्त जल (उबला हुआ पानी) का ही उपयोग करते हैं।

श्रावक अपने जीवन में अप्काय की हिंसा का सर्वथा त्याग नहीं कर सकता है, परंतु पीने के लिए सचित्त जल का त्याग कर सकता है।

एकासने-बियासना आदि में भी सचित्त त्याग का विधान होने से उनमें भी सचित्त जल का त्याग ही होता है और अचित्त जल का सेवन होता है।

प्रश्न - पानी को उबालने में तो पानी व पानी में रहनेवाले जीवों की हिंसा होती है तो उसे उबालने की क्या जरूरत है ?

उत्तर - जिस प्रकार पानी को उबालने में पानी के जीवों की हिंसा है, इसी प्रकार सचित्त जल को पीने में भी तो उन जीवों की हिंसा तो है ही।

फर्क इतना है कि पानी को नहीं उबालने पर कच्चे पानी की सचित्त योनि में असंख्य जीवों की उत्पत्ति और उनकी मृत्यु का चक्र प्रतिसमय चलता रहता है। क्योंकि उन जीवों का आयुष्य बहुत ही अल्प होता है।

पानी को एक बार अच्छी तरह से उबाल देने पर असाढ़ी चातुर्मास में तीन प्रहर तक, कार्तिक चातुर्मास में चार प्रहर तक तथा फागुण चातुर्मास में पाँच प्रहर तक अचित्त ही रहता है, अर्थात् उतने समय तक उसमें जीवोत्पत्ति नहीं होती है।

एक प्रहर अर्थात् लगभग तीन घंटे। इस प्रकार उबाला हुआ पानी लगभग 9, 12 व 15 घंटे तक अचित्त रहता है।

उसी पानी का काल पूरा होने के पहले उसमें चूना मिला दिया जाय तो वह पानी पुनः 24 प्रहर अर्थात् 72 घंटे तक अचित्त ही रहता है।

इससे सिद्ध होता है कि सचित्त जलपान की अपेक्षा अचित्त जलपान में हिंसा कम है।

किसी भी प्राणी को जीवित खा लेने में मन के परिणाम (अध्यवसाय) कठोर होते है, अचित्त वस्तु के भक्षण में मन के परिणाम कोमल रहते हैं। इससे स्पष्ट है कि सचित्त जल व्यक्ति को कठोर और अचित्त जल व्यक्ति के हृदय को कोमल बनाता है।

श्रावक अचित्त जलपान करता होगा तो उसे साधु-साध्वीजी के सुपात्र दान का भी लाभ मिल सकेगा।

पानी छानकर पीएँ

पानी को उबालने के पहले भी उसे मोटे कपड़े से अवश्य छानना चाहिए।

पानी को छानने से अप्काय के जीवों की हिंसा से तो नहीं बच पाते हैं, परंतु पानी में पैदा होने वाले बेइन्द्रिय आदि त्रस जीवों की हिंसा से अवश्य बचा जा सकता है। अतः जो व्यक्ति पीने में गर्म पानी का उपयोग नहीं करते हैं, उन्हें भी कम से कम पीने के पहले उसे अवश्य छानना चाहिए।

अप्काय

अधोलोक में रही सातों पृथ्वियों के नीचे घनोदधि के रूप में जो पानी होता है, वह अप्काय स्वरूप है।

- मध्यलोक में रहे असंख्य समुद्रों में रहा पानी अप्काय स्वरूप है।

- नदी, तालाब, कुआ, द्रह, कुंड, झरने आदि में रहा पानी अप्काय स्वरूप है।

- पांडुकवन, नंदनवन तथा वैमानिक देवलोक में रही बावड़ियों का पानी अप्काय स्वरूप है।

जीव संख्या

सात नरकों में रहे नारकियों से असंख्य गुणा अथवा चारों निकाय के देवताओं की संख्या से असंख्य गुणा जीव पानी की एक बूँद में होते हैं।

- पानी की 1 बूँद में जितने अप्काय के जीव हैं, उन जीवों का शरीर सरसों के दाने जितना हो जाय तो 1 लाख योजन का जंबुद्वीप भी भर जाता है।

अप्काय की विराधना

- सूर्य के ताप से अप्काय के जीवों का नाश होता है।

- मिट्टी, धूल आदि में मिलने से।

- खारे पानी में मीठा पानी या मीठे पानी में खारे पानी का मिश्रण करने से।

🍁 चूल्हे पर (अग्नि द्वारा) उबालने से।

🍁 तृषातुर व्यक्ति द्वारा जलपान करने से।

🍁 ठंडे पानी और गर्म पानी का मिश्रण करने से।

🔥 अग्निकाय के जीवों के भेद 🔥

इंगाल जाल मुम्मुर-उक्कासणि-कणग-विज्जुमाइया।
अगणि जियाणं भेया, नायव्वा बुद्धीए।।6।।

🔥 शब्दार्थ -

इंगाल = अंगार, ज्वाला रहित काष्ठ की अग्नि
जाल = ज्वाला
मुम्मुर = कंडे की गर्म राख में रहे अग्निकण
उक्का = उल्कापात
असणि = आकाश से गिरनेवाली चिंगारियाँ
कणग = आकाश से गिरने वाले अग्निगण
विज्जु = बिजली
आइया = इत्यादि
अगणि = अग्नि
जियाणं = जीवों के
भेया = भेद
नायव्वा = जानने चाहिए
निउणबुद्धीए = सूक्ष्म बुद्धि से

🔥 भावार्थ - अंगार, ज्वाला, कंडे की गर्म राख में रहे अग्निकण, उल्कापात, आकाश से गिरनेवाली चिंगारियाँ, आकाश से तारों के समान बरसते अग्निकण, बिजली आदि अग्निकाय जीवों के भेद सूक्ष्म बुद्धि से समझने चाहिए।

🔥 विवेचन - चलते-फिरते प्राणियों में जीवत्व का स्वीकार तो हर कोई करता है, परंतु स्थावर प्राणियों में जीवत्व का निर्देश तो जैन दर्शन में ही है। कई दर्शन पृथ्वी, अप्, तेडा और वायु को तत्त्वरूप मानते हैं, परंतु उनमें भी जीव हैं, यह बात सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा ने ही कही है। कई दर्शनकार व विज्ञान वनस्पति में जीव मानते हैं परंतु अग्नि में जीवत्व का स्वीकार तो सर्वज्ञ वचन की श्रद्धा बिना संभव नहीं है।

तेज के योग से जो जीव तेजस्वी अर्थात् अग्निकाय काया धारण करते हैं, उन्हें तेउकाय, तेजसकाय या अग्निकाय कहते हैं। अग्नि ही उन जीवों की काया होने से उन्हें अग्निकाय कहते हैं।

सूक्ष्म अग्निकाय के जीव तो चर्मचक्षु से अगोचर हैं और वे 14 राजलोक में सर्वत्र हैं, परंतु बादर अग्नि, जिन्हें हम देख सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं, उन जीवों की दया कर सकते हैं, उनके स्वरूप का वर्णन इस गाथा में किया गया है।

✸ इंगाल-अंगारा - जिसमें धुआँ न हो, ऐसे सुलगते हुए कोयले की आग को अंगार कहते है। धुएँ रहित ज्वाला का समावेश अंगारे में होता है।

✸ जाल-ज्वाला - जलती आग में जो ज्वालाएँ आग की लपटें निकलती हैं, उसे ज्वाला कहते हैं, ये ज्वालाएँ मूल से जुड़ी होती हैं और ऊपर ऊपर उठती रहती हैं।

✸ मुम्मुर-अग्निकण - गोबर के कंडे जल जाने के बाद ऊपर राख की परत जम जाती है, परंतु उसके नीचे अग्नि के छोटे-छोटे कण होते हैं। इसे करिष अग्नि भी कहते हैं।

✸ उक्कासणि-उल्का की आग - आकाश में से गिरनेवाली चिंगारियाँ। कभी-कभी आकाश में अग्नि की लाइनें दिखाई देती हैं, उसे उल्का अग्नि कहते हैं। रेखा युक्त अग्नि पिंड को उल्का कहते हैं।

✸ कणग-कण - आकाश में से गिरते हुए अग्नि कण।

✸ विद्युत - वर्षा ऋतु में कई बार बादलों की गड़गड़ाहट के साथ आकाश में बिजली चमकती है, वह बिजली भी अग्निकाय स्वरूप है।

शरीर पर आकाशीय बिजली गिरने पर तेउकाय के जीवों की हिंसा होती है।

इसके सिवाय सूर्यकांत मणि से पैदा होनेवाली आग, दो बाँसों के घर्षण से पैदा होनेवाली आग, पत्थर के टकराने से पैदा होनेवाली आग भी तेउकाय स्वरूप है।

🔥 अग्निकाय 🔥

बादर तेउकाय के जीव सिर्फ़ ढाई द्वीप में पंद्रह कर्मभूमियों में ही पैदा होते हैं।

पाँच महाविदेह में बादर अग्निकाय जीव हमेशा होते हैं, जबकि पाँच भरत और पाँच ऐरावत में तीर्थंकरों की उत्पत्ति के समय ही ये जीव पैदा होते हैं और शासन के विच्छेद के बाद उन जीवों की उत्पत्ति भी बंद हो जाती है।

वर्तमान अवसर्पिणी काल में तीसरे आरे के अंत में ऋषभदेव प्रभुजी की उत्पत्ति के बाद भरत क्षेत्र में बादर अग्नि पैदा हुई थी।

✸ लाइट आदि चालू करने में छट्ठ व बंद करने में अट्ठम का प्रायश्चित आता है। इससे ख्याल आता है कि तेउकाय की विराधना में कितना भयंकर पाप है।

✹ एक चावल के दाने जितनी जगह में अग्निकाय के जीतने जीव होते हैं, उन जीवों का शरीर खसखस के दाने जितना हो जाय तो यह सारा जंबुद्वीप भर जाय।

✹ अग्निकाय की विराधना में छः काय की विराधना है।

✹ देवता मरकर एकेन्द्रिय में पैदा होते हैं, परंतु तेउकाय और वायुकाय में पैदा नहीं होते हैं।

✹ मनुष्य मरकर तेउकाय वायुकाय में जा सकते हैं, परंतु तेउकाय और वायुकाय के जीव मरकर मनुष्य में पैदा नहीं होते हैं।

🔥 अग्नि में जीव सिद्ध 🔥

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी तारक तीर्थंकर परमात्मा का ज्ञान कितना सूक्ष्म है! अपने ज्ञान के बल से उन्होंने अग्नि में भी जीव देखे हैं। अन्य दर्शनकारों ने व विज्ञान ने वनस्पति में जीवत्व स्वीकार किया है परंतु अग्नि में रहे सूक्ष्म जीवों का निर्देश तो जैन धर्म में ही मिलता है।

जिस प्रकार अन्य प्राणी खुराक मिलने पर बढ़ते हैं और खुराक नहीं मिलने पर मुर्झा जाते हैं या खत्म हो जाते हैं, उसी प्रकार अग्निकाय जीव भी ईंधन आदि का खुराक मिलने पर बढ़ते हैं और ईंधन व वायु आदि नहीं मिलने पर समाप्त हो जाते हैं।

अग्निकाय के जीव भी वायु के अभाव में जीवित नहीं रह पाते हैं।

जिस प्रकार मनुष्य अनुकूल पवन मिलने पर ही जीवित रहता है, पवन नहीं मिलने पर या प्रतिकूल पवन मिलने पर मर जाता है, उसी प्रकार अग्निकाय के जीव भी अनुकूल पवन मिलने पर जीवित रहते हैं और पवन नहीं मिलने पर मर जाते हैं।

किसी पेटी में से पवन निकाल दिया जाय और उसमें दीपक रखा जाय तो वह बुझ जाता है। आवश्यकता से अधिक पवन मिलने पर भी दीपक बुझ जाता है।

अग्नि को लकड़ी आदि की खुराक और दीपक को तेल की खुराक मिलने पर वह अग्नि बढ़ती है। अग्नि को भी अनुकूल पवन चाहिए, प्रतिकूल पवन मिलने पर वह बुझ भी जाती है।

जिस प्रकार अन्य जीव आहार लेने के बाद उसके मल विष्ठा आदि के रूप में विसर्जित करते हैं, उसी प्रकार आग भी अपना खुराक लेकर असार भाग को राख के रूप में विसर्जित कर देती है।

जिस प्रकार विरोधी स्वभाववाले जीव या जड़ पदार्थ से मनुष्य को आघात लगता है अथवा मृत्यु हो जाती है, उसी प्रकार अग्नि के जीव भी पृथ्वी (रेती, धूल), पानी या कार्बनडाई ऑक्साइड जैसे पदार्थों से मृत्यु प्राप्त करते हैं।

पानी की तरह अग्नि भी जीव है और पानी की तरह अग्नि भी अन्य जीवों का आश्रयरूप भी है। अग्निकाय के जीव, पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय के जीवों को अपने तेज से निर्जीव कर अपने स्वरूप में परिणत करते हैं। अग्नि को 'सर्वभक्षी' भी कहते हैं।

अग्नि में अन्यकाय के जीव भी रहते हैं। शास्त्र में अग्नियोनिक मूषकों का वर्णन आता है, जो अग्निकाय स्थानों में पैदा होते हैं और उसी के बीच रहते हैं। उसके शरीर की रचना ही इस प्रकार की होती है कि वे अग्नि की उष्णता को सहन कर लेते हैं। उनकी काया पर ऐसी रोमराजि होती है, जो उन्हें अग्नि में भी रक्षण देती है।

जिस प्रकार Fire Brigade के लोग आग की लपटों के बीच में भी अग्नि संरक्षक ड्रेस पहनकर प्रवेश कर जाते हैं, उसी प्रकार से चूहे भी अग्नि संरक्षक रोमराजि के कारण अग्नि के बीच में भी आसानी से रह पाते हैं। इनकी रोमराजि में से ही रत्नकंबल का निर्माण होता है, जो सर्दी में ठंडी से, गर्मी में गर्मी से और वर्षा में वर्षा से बचाती है। आग में डालने पर ये रत्नकंबल शुद्ध हो जाते हैं अर्थात् इनका मेल दूर हो जाता है।

⚡ बिजली का प्रकाश भी सजीव है ⚡

अग्नि की तरह बिजली का प्रकाश भी सजीव है। अग्नि के अस्तित्व को टिकाए रखने के लिए वायु सहायक बनता है। यद्यपि इलेक्ट्रीक बल्ब में से स्थूल वायु को बाहर निकाल दिया जाता है फिर भी उसमें सूक्ष्म वायु तो होता ही है, उस वायु की मदद से वह तार जलकर प्रकाश देता है।

जैन साधु जब 'कालग्रहण' की क्रिया करते हैं, उस समय शरीर पर बिजली का लेश भी प्रकाश गिरने नहीं देते हैं क्योंकि बिजली सचित्त है, उस बिजली का प्रकाश शरीर पर गिरने से अग्निकाय के उन जीवों की हिंसा होती है।

सामायिक पौषध में भी अग्नि दीपक व बिजली को शरीर पर गिरने से बचाया जाता है। वह प्रकाश शरीर पर गिरने से व्रत में अतिचार लगता है, अतः उस अतिचार से बचने के लिए या तो बिजली के प्रकाशवाले स्थल से दूर ही रहा जाता है अथवा उस विराधना से बचने के लिए शरीर को ऊनी कामली से ढक दिया जाता है।

बिजली का प्रकाश शरीर पर गिरता हो तो चालू कायोत्सर्ग में भी उस स्थान से हटने का कायोत्सर्ग में आगार (अपवाद) है।

आगम ग्रंथों में बादर अग्निकाय के जीवों का लक्षण बताते हुए कहा है कि जिसमें दाह, प्रकाश व उष्णता हो, वह अग्निकाय है।

आगमग्रंथों में कहा है कि सुलगता हुआ अंगारा, राख में ढका हुआ अंगारा, धुएँ वाली आग, ज्योति, प्रकाश, उल्का, बिजली, अग्निकण, ईंट की भट्टी की आग, कुंभार की भट्टी की आग, अग्नि से लालबूंद हुआ लोहे का गोला, चूल्हे की आग, लकड़ी की आग, कंडे की आग, सूर्यकांतमणि से पैदा हुई आग, वृक्ष की डालियों के घर्षण से पैदा हुई आग, दीपक की शिखा, ज्योति, आकाशीय अग्नि आदि सभी अग्निकाय के प्रकार है।

इलेक्ट्रिक बल्ब में जिस मार्ग से बिजली अंदर जाकर टंगस्टन के तार को जलाती है, उस मार्ग से वायु भी अंदर जा सकता है।

बादर पर्याप्त अग्निकाय की अपेक्षा बादर पर्याप्त वायुकाय की अवगाहना असंख्य गुणी कम है अतः बल्ब में वायुकाय का प्रवेश आसानी से हो सकता है।

जहाँ अग्नि होती है वहाँ वायु अवश्य होता है अतः बल्ब में प्रकाश होने से वहाँ भी वायु है ही।

बल्ब में रहे वायु को अग्नि कहते हैं, जो आॅक्सीजन की तरह ही जलने में सहायक होता है।

वैज्ञानिकों ने भी शोध करके सिद्ध किया है कि आकाशीय बिजली और इलेक्ट्रिक तार Wire में बहनेवाली कृत्रिम बिजली एक ही है।

आकाशीय बिजली को भी बिजली के तारों द्वारा वहन कर सकते हैं। इसी कारण ऊँचे मंदिर व बड़ी बिल्डिंग की सुरक्षा के लिए बिजली को ग्रहणकर उसे अर्थिंग करने की व्यवस्था की जाती है।

बड़े-बड़े बिजली घरों में संघर्षण से भी बिजली पैदा की जाती है, वह बिजली भी सचित्त होती है।

जिस प्रकार राख से ढकी बिजली दिखती नहीं है, परंतु पेट्रोल डालने पर तुरंत भड़कती है, उसी प्रकार बिजली के तार में अग्नि होती है जो शोर्ट सर्किट, लीकेज व ओजोन आदि वायु की उपस्थिति में जलता हुआ दिखाई देता है।

इलेक्ट्रिक बिजली में दाहकता व उष्णता भी होती है, इसी कारण वायर wire भी गर्म हो जाता है

आगम ग्रंथों में कहा है कि तेजोलेश्या का जो प्रकाश होता है, वह बिजली जैसा कहा गया है, परंतु वह सचित्त नहीं बल्कि अचित्त होता है।

तेउकाय के जीव त्रस व स्थावर जीवों के मृत कलेवर में भी पैदा हो सकते हैं।

गैस, लकड़ी, रूई, कागज, प्लास्टिक, पेट्रोल, तेल, घी, पत्थर, ईंट, घासलेट, घास, लोहा आदि पदार्थों में भी अग्निकाय जीव पैदा होते हैं और उन पदार्थों को अपने शरीर रूप में परिणत कर देते हैं।

तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है कि तेउकाय जीव और उनका प्रकाश एक ही वस्तु है इस कारण बल्ब के बाहर फैला हुआ प्रकाश भी तेउकाय ही है।

बिजली भी सचित्त ही है, क्योंकि पकाना-प्रकाश देना आदि जो गुणधर्म अग्नि के हैं, वे ही गुणधर्म बिजली के भी हैं।

शरीर में शरीर की गर्मी, खद्योत का प्रकाश, जठराग्नि, बुखार की गर्मी, तेजोलेश्या का प्रकाश, सूर्य का प्रकाश, नरक की अग्नि, चंद्र प्रकाश तथा मणि के प्रकाश को तेउकाय में नहीं गिना गया है, शेष सभी प्रकाश तेउ।

- रत्नों में जो प्रकाश होता है वह रत्न रूप पृथ्वीकाय जीवों के उद्योत नामकर्म के उदय के कारण होता है। अतः उसमें भी जो प्रकाश है, वह जीव के कारण ही है, इसी प्रकार बिजली में भी जो प्रकाश होता है, वह जीव प्रयोग से ही होता है।

- सूर्य प्रकाश निर्जीव होता है, परंतु उसका उत्पत्ति स्थान जो सूर्य का विमान है, वह पृथ्वीकाय का ही है, आतप नामकर्म के उदय के कारण उसका उष्ण प्रकाश होता है, वह भी जीव प्रयोग से ही है।

- आकाश में बिजली चमकती हो और उसका प्रकाश शरीर पर पड़े तो भी तेउकाय की विराधना होती है।

- अग्नि की उत्पत्ति में पृथ्वीकाय आदि अनेक जीवों का घात रहा हुआ है। अतः उससे भयंकर पापकर्म का बंध होता है। अग्नि दीर्घलोक शस्त्र है, जो सभी जीव समूह को जलाकर भस्मीभूत कर देता है।

- इलेक्ट्रिसिटी के उत्पादन में छः काय की भयंकर विराधना है। बड़ी नदियों पर बाँध बनाकर उसके तीव्र प्रवाह से हाइड्रो इलेक्ट्रिक पैदा की जाती है। टरबाइन के घूमते पंखों से लाखों जलचर प्राणी खत्म हो जाते हैं।

थर्मल इलेक्ट्रिक पैदा करने के लिए भी लाखों टन कोयले आदि को जलाया जाता है, अतः उसमें भी त्रस आदि जीवों की विराधना रही हुई है।

✿ वायुकाय जीवों के भेद ✿

उब्भामग उक्कलिया मंडलि मह सुद्ध गुंज वाया य।
घण तणु वायाइया, भेया खलु वाउकायस्स।।7।।

शब्दार्थ -

उब्भामग = ऊँचे उड़ने वाला वायु
उक्कलिया = नीचे बहने वाला वायु
मंडली = गोलाकार बहने वाला वायु
मह = आंधी
सुद्ध = मंद गति से बहने वाला वायु
गुंजवाया = गुंजन करता हुआ वायु
य = तथा
घण = गाढ़ा वायु
तणु = तनवात-पतला वायु

वाय = वायु
आइया = इत्यादि
खलु = निश्चय से
वाउकायस्स = वायुकाय के
भेया = भेद हैं।

✿ भावार्थ - ऊँचे बहनेवाला, नीचे बहनेवाला, गोलाकार बहनेवाला, आंधी, मंद बहने वाला, गुंजार करता हुआ वायु, घनवात और तनवात आदि वायुकाय जीवों के भेद हैं।

✿ वायु में जीव सिद्धि ✿

जीव को छोड़कर अन्य किसी पदार्थ में स्वतः गति करने की शक्ति नहीं है, क्योंकि मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सचेतन अवस्था में ही गति करते हैं।

वायु भी बिना किसी की प्रेरणा से इधर-उधर स्वतः गति करती है, उसमें भी जीव है, चेतना है।

वायु का अस्तित्व आँखों द्वारा देखा नहीं जा सकता है, परंतु स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा उसका अनुभव जरूर किया जा सकता है। वायुकाय के भी अनेक प्रकार है।

🍁 1- उद्भ्रामक वायु - जमीन से ऊपर आकाश की ओर घूमने के स्वभाव वाले वायु को उद्भ्रामक वायु कहते हैं। यह वायु अपनी ताकत से अन्य व्यक्ति या वस्तुओं को भी ऊपर ले जाता है, इसे संवर्तक वायु भी कहते हैं।

तारक तीर्थंकर परमात्मा के जन्म के समय दिक्ककुमारिकाएँ आकर इसी संवर्तक वायु द्वारा भूमि शुद्ध करती है। तारक परमात्मा की धर्मदेशना के लिए सणवसरण की रचना के पूर्व वायुकुमार देवता आकर संवर्तक वायु द्वारा ही एक योजन भूमि को शुद्ध करते हैं।

🍁 2- उत्कलिक वायु - जो वायु ऊपर से नीचे की ओर आता है, उसे उत्कलिक वायु कहते हैं। इस वायु के कारण भूमि पर पड़ी वस्तुएँ इधर-उधर बिखर जाती हैं। रेगिस्तान में इसी वायु के द्वारा कहीं रेत के टीले हो जाते हैं तो कहीं टीले भी मैदान में बदल जाते हैं।

🍁 3- मंडली वायु - चक्र की तरह गोल-गोल घूमने के स्वभाव वाली वायु को मंडली वायु कहते हैं, चक्रवात पवन के जाल में फँसा जहाज भी गोल-गोल घूमकर दूर जाता है।

🍁 4- महावायु - भयंकर आंधी और तूफान के रूप में जब पवन बहता है तो उसे महावायु कहते हैं ।

मुख से निकलने वाले वायु को मुखवायु कहते हैं।

🍁 5- शुद्ध वायु - मंद-मंद गति से जब ठंडा पवन बहता है तो उसे शुद्ध वायु कहते हैं। जंगल में बाँस के झाड़ की पोलाण में से गुंजन करते हुए वायु को शुद्ध वायु कहते हैं।

✿ 6- घनवात - देवताओं के विमान और नरक पृथ्वियाँ जिसके आधार पर रही हुई हैं, उसमें घनवात Solid Airbodies भी एक है। इस वायु में घनता अत्यधिक होती है।

🍁 7- तनवात - देव विमान और नारक पृथ्वियों के आधार के लिए एक तनवात भी होती है। इस वायु में घनता कम होती है।

कम क्षेत्र में अधिक अणुस्कंध रहते हों तो उसमें घनता अधिक होती है और अधिक क्षेत्र में कम अणुस्कंध रहते हैं तो घनता कम होती है।

देव विमान व नारक पृथ्वियों के नीचे यह घनवात और तनवात असंख्य योजन के मोटे पिंड के रूप में रहती है। इन दो वायु और घनोदधि के आधार पर नरक-पृथ्वियाँ और देव विमान टिके हुए हैं।

वायुकाय के जीव चर्म चक्षु से अदृश्य होते हैं, उनका शरीर अत्यंत ही सूक्ष्म होता है। अपनी स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा ही हमें वायुकाय के अस्तित्व का आभास होता है।

अन्य जीवों के अस्तित्व और स्वस्थता में वायुकाय के जीवों की खूब सहायता है।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और अन्य त्रस जीव वायु की उपस्थिति में ही स्वस्थता का अनुभव करते हैं।

केमिकल के प्रदूषण से नदियों व समुद्र के जल में वायु का प्रमाण घट जाता है, जिसके फलस्वरूप अनेक जलचर प्राणी मौत के मुख में चले जाते हैं।

कई जहरीली वायु मनुष्य के मौत का भी कारण बनती हैं। जर्मनी के एडाॅल्फ हिटलर ने लाखों यहूदियों को गैस के चेंबर में बंद कर मौत के घाट उतार दिया था।

कई वायु ईंधन का भी काम करते हैं। आजकल घरों में रसोई बनाने के लिए L.P.G. तैलीय Gas का ही उपयोग होता है।

कुछ वायु से आग बुझ जाती है, तैलीय वायु को पानी से नहीं बुझा सकते हैं, उसके लिए विरोधी गुणधर्म वाली वायु का ही उपयोग किया जाता है।

कुछ स्थानों को छोड़कर चौदह राजलोक में सदैव वायु का अस्तित्व होता है।

वायुकाय में स्वाभाविक गति है, इस कारण उनका समावेश गति त्रस जीवों में भी होता है।

वायुकाय के जीव अधिकतम 3000 वर्ष तक जीवित रह सकते हैं, तह उनका उत्कृष्ट आयुष्य है।

✿ वायुकाय जीवों की विराधना ✿

- पंखा चलाने से वायुकाय जीव मरते हैं।

- पूर्व दिशा का पवन पश्चिम दिशा के पवन से और पश्चिम दिशा का पवन पूर्व दिशा के पवन से टकराने से वायुकाय के जीव मरते हैं।

- नाक व मुख से श्वास लेने से वायुकाय के जीव मरते हैं।

- मुंहपत्ति के उपयोग बिना बोलने से भी वायुकाय के जीव मरते हैं।

- साँप भी वायु का भक्षण करता है, जिससे वायुकाय के जीव मरते हैं।

वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिए सर्वप्रथम तो वायुकाय की उत्पत्ति में निमित्तभूत नहीं बनना चाहिए।

इलेक्ट्रिक पंखा, टेबल फेन, कूलर, हीटर, ए.सी. आदि का उपयोग करने से वायुकाय के जीवों का नाश होता है।

हाथ-पंखा, वस्त्र-पंखे आदि से हवा खाने से वायुकाय के असंख्य जीवों की हिंसा होती है।

सायकल, मोटर, टेंपो, टैक्सी, स्कूटर, बस, ट्रक, रेलगाड़ी, जहाज, वायुयान आदि चलाने से भी वायुकाय के जीवों की हिंसा होती है।

गमनागमन करने से, दौड़ने से, व्यायाम, पर्वतारोहण, स्वीमिंग, पतंग उड़ाने आदि से भी वायुकाय के असंख्य जीवों की विराधना होती है।

आग लगाने, ऊपर की मंजिल से कचरा-पानी आदि फेंकने से लिफ्ट में चढ़ने-उतरने से झूले में झूलने से रोपवे में बैठने से, ऊपर से कूदने से वायुकाय के जीवों की विराधना होती है।

गर्म चाय को ठंडी करने के लिए फूंक मारने से, गर्मजल को ठंडा करने से, स्टोव, गैस, चूल्हा, पैट्रोमेक्स, मोमबत्ती, दीपक आदि जलाने से भी वायुकाय के जीवों की विराधना होती है। बहुत पवन वाले स्थान में कपड़ा सुखाने से, कपड़े को झाड़ने से, झाड़ू निकालने से भी वायुकाय के जीवों की विराधना होती है। ट्यूब, तकिये आदि में जो हवा भरी जाती है, वह भी वायुकाय ही है, जो अमुक समय बाद निर्जीव हो जाती है।

वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिए अपने हाथ-पंखा, वस्त्र आदि से हवा नहीं खानी चाहिए। वायुकाय की हिंसा से बचने के लिए ए.सी., कूलर, पंखे आदि का उपयोग नहीं करना चाहिए।

वस्त्र आदि की प्रतिलेखना करते समय भी जयणाधर्म का पालन करना चाहिए।

☘ **वनस्पतिकाय के भेद-प्रभेद** ☘

साहारण पत्तेया वणस्सइ-जीवा दुहा सुए भणिया।
जेसिमणंताणं तणू एगा साहारणा ते उ।।8।।

कंदा अंकुर-किसलय-पणगा सेवाल भूमिफोडा य।
अल्लयतिय गज्जर मोत्थ वत्थूला थेग पल्लंका।।9।।

कोमल फलं च सव्वं, गूढसिराइं सिणाइपत्ताइं।
थोहरि कुंआरी गुग्गुलि गलोयपमुहाउ छिन्नरुहा।।10।।

इच्चाइणो अणेगे हवंति भेया अणंतकायाणं।
तेसिं परिजाणणत्थं, लक्खणमेयं सुए भणियं।।11।।

☘ शब्दार्थ -

साहारण = साधारण
पत्तेया = प्रत्येक
वणस्सइजीवा = वनस्पति जीव
दुहा = दो प्रकार के
सुए = आगम शास्त्रों में
भणिया = कहे गए हैं
जेसिमणंताणं = जिन अनंत जीवों का
एगा = एक
तणू = शरीर
साहारणा = साधारण
ते उ = वे
।।8।।

कंदा = जमीनकंद
अंकुर = अंकुरा
किसलय = कूंपल, कोमल पत्ते
पणगा = पंचरंगी फूलण
सेवाल = कोई
भूमिफोडा = भूमि स्फोट
य = तथा
अल्लयतिय = हरे तीन
गज्जर = गाजर
मोत्थ = नागर मोत्था
वत्थुला = बथुए की भाजी
थेग = एक प्रकार का कंद
पल्लंका = पालक की भाजी ।।9।।

कोमल फलं = कोमल फल
च = और
सव्वं = सभी
थोहरि = थोहर
कुंआरी = घी कुंआर
गुग्गुली = गुग्गुल
गूढ सिराइं = गुप्त नसों वाले
गलोय पमुहाइ = गलोम आदि
छिन्नरुहा = काटने पर उगने वाले ।।10।।

इच्चाइणो = इत्यादि
अणेगे = अनेक
हवंति = होते हैं
भेया = भेद
आणंतकायाणं = अनंतकाय के
तेसिं = उनको
परिजाणणत्थं = जानने के लिए
लक्खण = लक्षण
एयं = ये
सुए भणियं = शास्त्र में कहे हैं ।।11।।

☘ भावार्थ - शास्त्रों में वनस्पतिकाय के मुख्य दो भेद बतलाए हैं साधारण वनस्पतिकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय। जिन अनंत जीवों का एक शरीर हो, वे साधारण वनस्पतिकाय कहलाते हैं।।8।।

आलू, आदि जमीकंद, अंकुर, कूंपल, पाँचवर्ण की फूलण (जो बासी अन्न में पैदा होती है) शैवाल, वर्षा में पैदा होनेवाली छत्राकार वनस्पति, (अदरख, हल्दी व कच्चूरक) आर्द्रकत्रिक, गाजर, नागरमोथा बथुआ, थेग, पालक की भाजी, सभी प्रकार के कोमल फल, गुप्त नसों वाले सन आदि के पत्ते, काटने पर बो देने से उराने वाली थोहर घीकुंआर, गुग्गुल तथा गलोय आदि वनस्पतियाँ (साधारण वनस्पति अर्थात् अनंतकाय) हैं।।9-10।।

इत्यादि अनंतकाय जीवों के अनेक भेद हैं। उनको अच्छी तरह से जानने के लिए शास्त्र में उनके लक्षण बतलाए हैं।।11।।
★★★★★★★★★★★★★★★★

साधारण वनस्पतिकाय –

आलू, शकरकंद, अदरख,
कच्ची हल्दी, बीट, लहसन,
प्याज, गाजर, मूला, सुरण आदि।

साधारण व प्रत्येक वनस्पतिकाय के लक्षण

गूढ सिर संधि, पव्वं सम-भंग महीरगं च छिन्न रुहं ।
साहारणं सरीरं, तव्विवरीयं च पत्तेयं ।।12 ।।
———————
एग सरीरे एगो, जीवो जेसिं तु ते य पत्तेया ।
फल-फूल-छल्लि-कट्ठा मूलग पत्ताणि बीयाणि ।।13 ।।
————————————

शब्दार्थ– –

गूढ = गुप्त हो
सिर = नसें
संधि = जोड़
पव्वं = गाँठें
समभंगं = तोड़ने पर समान टुकड़े हों
अहीरगं = तंतु न हो
छिन्नरुहं = काटने पर भी उगे
साहारणं = साधारण वनस्पतिकाय
सरीरं = शरीर
च = और
तव्विवरीयं = उससे विपरीत
पत्तेयं = प्रत्येक वनस्पतिकाय ।।12।।
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

एक सरीरे = एक शरीर में
एगो = एक
जीवो = जीव
जेसिं = जिनके
तु ते = वे तो
पत्तेया = प्रत्येक वनस्पति
फल =फल
फूल = पुष्प
छल्लि = छाल
कट्ठा = लकड़ी
मूलग = जड़
पत्ताणि = पत्ते
बीयाणि = बीज ।।13।।
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~
भावार्थ – जिनकी नसें, संधिस्थल व गाँठें गुप्त हों, दिखाई ना दें । जिनको तोड़ने पर समान टुकड़े होते हों, जो काटने पर भी उगते हैं, वे सभी साधारण वनस्पतिकाय के शरीर होते हैं और इनसे विपरीत प्रत्येक वनस्पतिकाय है ।।12।।
जिनके एक शरीर में एक जीव हो, वे प्रत्येक वनस्पतिकाय हैं । उसके 7 भेद हैं - फल, फूल, छाल, काष्ठ, मूल पत्ते और बीज ।।13।।
★★★★★★★★★★★★★★★

विवेचन – जैन आगम ग्रंथों में वनस्पति-स्वरूप जीवों का जितना सूक्ष्म और तलस्पर्शी वर्णन है, उतना अन्य किसी धर्म में देखने को नहीं मिलता है । वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बोस ने वर्षों तक प्रयोग करके वनस्पति में रहे जीवत्व को सिद्ध किया, परंतु जैन आगमों में वनस्पति प्राणी सृष्टि का बहुत ही विशद वर्णन देखने को मिलता है ।

वनस्पति रुप जीवों को मात्र एक ही स्पर्शनेन्द्रिय है, उसी इन्द्रिय से वे आहार ग्रहण करती हैं, अपने सुख-दुःख की अनुभूति भी उसी इन्द्रिय से करती है । अनुकूल आहार खाद, पानी, हवा आदि मिलने पर वनस्पति विकसित होती है और विपरीत आहार या जल न मिलने पर वह सूख भी जाती है ।

❁ वनस्पति के दो भेद– ❁

~ साधारण व प्रत्येक~

बाह्य दृष्टि से आलू और आम दोनों वनस्पति रूप दिखाई देते हैं, परंतु उनके भीतर रही जीव सृष्टि की संख्या में बहुत बड़ा अंतर है । आलू के एक फल में ..... अरे ! उसके सुई के अग्र भाग जितने भाग में भी अनंत जीव हैं ।

पृथ्वीकाय के जीव असंख्य हैं ।

अप्काय के जीव असंख्य हैं ।

तेउकाय के जी असंख्य हैं ।

वायुकाय के जीव असंख्य हैं ।

प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीव असंख्य हैं ।

देवलोक में रहे देवता असंख्य हैं ।

नरक में रहे जीव असंख्य हैं ।

परंतु साधारण वनस्पतिकाय के जीव अनंत हैं । साधारण वनस्पतिकाय के जीवों को छोड़ विश्व की समस्त प्राणी सृष्टि को जोड़ Total किया जाय तो वे सभी असंख्य Uncountable ही होते हैं जबकि साधारण वनस्पति के जीव अनंत Infinite हैं ।

साधारण वनस्पतिकाय के जीव भी दो प्रकार के हैं–

दृश्यमान और अदृश्य ।

जमींकद आदि साधारण वनस्पतिकाय के जीवों को हम अपनी आँखों से देख सकते हैं, उनका अनुभव कर सकते हैं और अभयदान देकर उन जीवों का रक्षण भी कर सकते हैं, जबकि चौदह राजलोक में असंख्य निगोद के गोले हैं, जिन्हें हम अपनी चर्म चक्षुओं द्वारा नहीं देख सकते हैं अथवा उनका अन्य इन्द्रियों द्वारा भी अनुभव नहीं कर सकते हैं । उनका हम छेदन-भेदन भी नहीं कर सकते हैं ।

जो दृश्यमान निगोद के जीव हैं, उन जीवों के रक्षण के लिए प्रयत्न करना हमारा कर्तव्य है, इसीलिए उन जीवों के स्वरूप को जानने के लिए हमें अवश्य ही योग्य पुरुषार्थ करना चाहिए ।

❀ वनस्पति में जीव सिद्धि ❀

जिस प्रकार मनुष्य अपनी इन्द्रियों के द्वारा पदार्थ का बोध करता है, उसी प्रकार वनस्पति के जीव भी अपनी एक ही इन्द्रिय के द्वारा अति अल्प प्रमाण में पाँच इन्द्रियों के विषय का बोध करती हैं । यद्यपि वनस्पति में बाह्य दृष्टि से एक ही इन्द्रिय होती है, फिर भी भाव से तो उसमें भी पाँच इन्द्रियाँ हैं ।

यद्यपि विकास की दृष्टि से वनस्पति के जीवों का विकास अति अल्प प्रमाण में हुआ होने से वह अनुभव बहुत ही मंद होता है ।

वनस्पतिकाय के जीव पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और अन्य त्रस जीवों को अपनमग्य आहार के रूप में जानकर उसे ग्रहण कर अपनी काया के रूप में बदल देते हैं ।

जिस प्रकार अनुकूल खुराक मिलने से अन्य जीवों का शरीर बढ़ता है उसी प्रकार वनस्पति को भी अनुकूल खुराक मिलने से वह बढ़ती है और और न मिलने पर मुर्झा जाती है ।

जिस प्रकार मनुष्य में बाल, युवा व वृद्धावस्था होती है, उसी प्रकार वनस्पति में भी ये अवस्थाएँ होती हैं ।

वनस्पति में भी राग-प्रेम-हर्ष-शोक, लोभ, भय, मैथुन, क्रोध, मान, माया आदि भाव दिखाई देते हैं ।

गत जन्मों के संस्कारों के कारण वनस्पति में भी कई संस्कार दिखाई देते हैं ।

जिस प्रकार बया पक्षी घोंसला बनाने में कुशल होता है; तोता, कोयल व मैना मधुर ध्वनि करते हैं, भौंरा बाँस में छेद कर देता है; उसी प्रकार वनस्पति में भी कई आश्चर्यजनक घटनाएं देखने को मिलती हैं ।

1. कंदल व कुंडल वनस्पति मेघ की गर्जनाओं को सुनकर पल्लवित होती हैं ।

2. कई लताएँ दीवार व स्तंभ को देख ऊपर चढ़ जाती हैं ।

3. कुछ वनस्पतियाँ धूप आदि की सुगंध से वृद्धि पाती हैं ।

4. गन्ने जैसी वनस्पतियाँ भूमि से मीठा रस चूस लेती हैं ।

कुछ ऐसी भी वनस्पतियाँ हैं, जिनका स्पर्श करने पर वे संकुचित हो जाती हैं अर्थात् किसी के स्पर्श से प्रभावित होती हैं । जैसे छुई-मुई वनस्पति में भी निद्रा व जागृत अवस्था देखी जाती है। जैसे सूर्य विकासी कमल सूर्य के उदय होने पर खिलता है और सूर्य के अस्त होने पर मुर्झा जाता है । कुछ कमल चंद्र के उदय के साथ खिलते हैं और चंद्र के अस्त होने पर मुर्झा जाते हैं ।

बबूल वृक्ष के पत्ते ज्यों-ज्यों दिन खिलता है, त्यों-त्यों ताजे रहते हैं और अंधेरा होने पर संकुचित हो जाते हैं ।

कई वनस्पतियों में मनुष्य की तरह "राग भाव" भी दिखाई देता है । अशोक, बकुल आदि वृक्षों पर नूपुर पहनी हुई स्त्री प्रहार करती है, तब वे वृक्ष खिलते हैं ।

वनस्पति पर काल का भी प्रभाव होता है । कई वनस्पतियाँ सुकाल के वातावरण को पाकर खिलती है तो कई वनस्पतियाँ दुष्काल में खिलती है ।

कई वनस्पतियों में "शब्द ध्वनि" सुनाई देती है, कोकनद का वृक्ष हुंकार की आवाज़ करता है।

कई वनस्पतियों में "रुदन क्रिया" भी दिखाई देती है । रुदन्ती वनस्पति बारबार आँसुओं की तरह पानी की बूँदें गिराती है ।

कई वनस्पतियों में "परिग्रह संज्ञा" के संस्कार भी दिखाई देते हैं । बिल्व व पलाश नामक वनस्पति जमीन में धन गड़ा हो तो उस पर अपनी जड़े व पत्ते फैला देती हैं ।

कई लताएँ अपने फलों को पत्तों के नीचे ढकने का प्रयास करती हैं, जो "माया" का प्रतीक है ।

"भय संज्ञा" – वनस्पति में भय-अभय के भाव भी दिखाई देते हैं ।

रशियन वैज्ञानिक ने गेलवेनोमीटर [Galvanometer] नाम का यंत्र बनाया है, इस यंत्र के माध्यम से वनस्पति में रही भय-प्रेम आदि की संवेदनाओं को जाना जा सकता है ।

एक बार उस यंत्र को किसी पौधे की मुख्य शिराओं के साथ जोड़ा गया । फिर उस पौधे के पास अलग-अलग भावों को अभिव्यक्त किया गया, 'तुम निरोग रहो, स्वस्थ रहो, दीर्घायु बनो, आदि-आदि जब शुभ भाव व्यक्त किए गए, तब उस ग्राफ के ऊपर आनंद के आंदोलन थे और उसी पौधे के पास 'इसे काट डालो, चीर डालो, उखाड़ दो' आदि भाव व्यक्त किए गए तब वे कंपन अनियमित होने लगे । मानों वह वनस्पति अपने प्रतिकूल भावों को अभिव्यक्त कर रही थी ।

उसी वृक्ष को जल का सिंचन किया जाय तो उस पर शुभ भावों की अभिव्यक्ति और उसी को जलाने का प्रयास किया जाय तो भय के भाव दिखाई दिए। इस प्रकार वनस्पति में भी हर्ष-शोक, भय आदि की अनुभूतियाँ दिखाई देती हैं ।

☞ इक्षु रस, तीर्थों के जल आदि के सिंचन से कई वृक्ष खूब खिलते हैं तथा कचरा, अशुचि पदार्थ आदि से वृक्ष बीमार हो जाते हैं ।

☞ वनस्पति में मैथुन संज्ञा भी होती है । कई नर वृक्ष नर पराग कणों को विसर्जित करते हैं, जिन्हें मादा वृक्ष ग्रहण करते हैं। पानी के प्रवाह पर तैरते नर पराग कणों को ग्रहण करने के लिए मादा वनस्पति के पुष्प पानी के ऊपर आते हैं । पपीते आदि वृक्षों में नर-मादा वृक्ष होते हैं ।

☞ कई वनस्पतियाँ नवयौवना के मुख के तांबूल रस को थूकने पर विकसित होती हैं ।

मनुष्य व पशु-पक्षी की तरह वनस्पति में भी कई रोग लागू पड़ते हैं । कई प्राचीन ग्रंथों में उन रोगों की चिकित्सा के उपाय बतलाए हैं ।

शस्त्र के प्रहार व विषभक्षण आदि से मनुष्य की अकाल मृत्यु भी होती है, उसी प्रकार शस्त्र आदि लगने से वनस्पति की भी अकाल मृत्यु होती है ।

☞ वनस्पति में ओघ संज्ञा भी होती है, इसी कारण कई लताएँ स्तंभ आदि का सहारा लेकर खूब ऊपर चढ़ जाती हैं और कहीं मोड़ आए तो स्वयं मुड़ जाती है ।

☞ गेहूँ, ज्वार आदि वनस्पतियाँ फल लगने के बाद सूख जाती हैं ।

☞ गन्ना, केला आदि के पौधे 2-3 वर्ष तक और आम आदि कई वृक्ष वर्षों तक फल देते हैं ।

☘ वनस्पति के प्रकार ☘

1. वृक्ष– कुछ वनस्पति वृक्ष के रूप में पैदा होती है । जैसे - आम, पीपल आदि ।

2. गुच्छा– कुछ वनस्पति गुच्छे के रूप में पैदा होती है । जैसे - कपास, मिर्च ।

3. पुष्प– कुछ वनस्पति पुष्प के रूप में उगती है । जैसे - गुलाब, मोगरा ।

4. लता– कुछ वनस्पति लता के रूप में उगती है । जैसे - वृक्ष पर उगने वाली लताएँ ।

5. वल्ली– कुछ वनस्पति वल्ली के रूप में उगती है । जैसे - ककड़ी, करेला, खरबूजा ।

6. पर्व– कुछ वनस्पति पर्व के रूप में उगती है । जैसे - गन्ना, बाँस ।

7. तृण– कुछ वनस्पति घास के रूप में पैदा होती है । जैसे - अनेक प्रकार की घास ।

8. वलय– कई वनस्पति वलय के रूप में पैदा होती है । जैसे - केला, खजूर आदि ।

9. हरित– कई वनस्पति शाक-भाजी के रूप में पैदा होती है । जैसे - भिंडी, दूधी ।

10. औषधि–कुछ वनस्पति औषधि के रूप में पैदा होती है । जैसे - गेहूँ, जौ ।

11. जलरुह– कई वनस्पति पानी में पैदा होती है । जैसे - सिंघोड़ा, कमल आदि ।

12. छत्रक– कई वनस्पति छत्र के रूप में पैदा होती है । जैसे - मशरुम ।

वनस्पतिकाय के उगने के प्रकार

1. अग्र बीज – कुछ वनस्पति, वनस्पति के आगे का भाग बोने पर उगती है। जैसे - नागरवेल, कोरंट आदि ।

2. मूल बीज– कुछ वनस्पति, वनस्पति का मूल भाग बोने से उगती है । जैसे - उत्पलकंद आदि ।

3. स्कंध बीज– कुछ वनस्पति डाल के बोने से उगती है ।

4. पर्व बीज– कुछ वनस्पति गाँठों को बोने से उगती है । जैसे - गन्ना, बाँस आदि ।

5. बीज बीज– कुछ वनस्पति बीज बोने से पैदा होती है । जैसे - जौ आदि धान्य ।

6. संमूर्च्छनज– कुछ वनस्पति बिना बोए ही उगती है । जैसे - सिंघोड़ा आदि ।

☘ वनस्पति में विविधता ☘

~~~~~~~~~~~~~~~~~~

वनस्पति में भी वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और शब्द होता है । यद्यपि वनस्पति में भी सभी वर्ण होते हैं, फिर भी हरे रंग की प्रधानता है । जहाँ वनस्पति अधिक हो, उसके लिए 'हरियाली' शब्द का भी प्रयोग करते हैं ।

• कुछ वनस्पति औषधि के रूप में होती है तो कुछ वनस्पति जहर रूप भी होती है । ब्राह्मी आदि औषधि गुणकारी है तो अफीम, धतूरा आदि विष रूप है ।

• इलायची, लौंग आदि वनस्पति सुगंधित भी होती हैं तो कुछ वनस्पति दुर्गंध भी देती हैं ।

• कुछ वनस्पति सिर्फ पानी में पैदा होती है तो कुछ वनस्पति जमीन पर पैदा होती हैं तो कुछ वनस्पति जल-स्थल दोनों जगह पैदा होती है । कुछ वनस्पति गर्मी की ऋतु में ज्यादा बढ़ती है तो कुछ वनस्पति सर्दी में, तो कुछ वनस्पति वर्षा की ऋतु में ज्यादा बढ़ती है ।

• कुछ वनस्पति का तना बड़ा होता है तो फल बहुत छोटा होता है जैसे वट वृक्ष । कुछ वनस्पति बहुत छोटी होती हैं, परंतु उनका फल बड़ा होता है । जैसे कलिंगर, ककड़ी ।

• कुछ वनस्पति को जीव-जंतु बिल्कुल नुकसान नहीं करते हैं तो कुछ वनस्पति को जीव-जंतु तुरंत खा जाते हैं ।

• कुछ वनस्पति सिर्फ मीठा पानी ही लेती हैं तो कुछ वनस्पति सादे पानी में भी उग जाती हैं तो कुछ वनस्पति खारे पानी में भी पैदा हो जाती हैं ।

• कुछ वनस्पति व्यवस्थित भूमि में ही उगती है तो कुछ वनस्पति पथरीले भाग में भी उग जाती है ।

• कुछ वनस्पति खूब विस्तार में फैल जाती है । भिन्न-भिन्न वनस्पतियों के मूल, तना, पत्ते और फूल के आकार भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं ।

जैन-दर्शन की भाँति अन्य दर्शनकारों ने भी वनस्पति में जीवत्व को स्वीकार किया है ।

☞ 'छांदोग्य-उपनिषद्' में कहा है–
'सभी वनस्पति में आत्मा व्याप्त होकर रहा है ।'

☞ मनुस्मृति में कहा है –
'सभी स्थावर जीवों में भी सुख-दुःख की अनुभूति हीता है ।
~~~~~~~~~~~~~~~~~~

आज के वैज्ञानिकों ने भी वनस्पति में रहे चैतन्य तत्त्व को स्वीकार किया है । फ्रेंच वैज्ञानिक 'कुवि' ने 1828 के 'प्राणी राज्य' समाचार-पत्र में लिखा है.... अपनी तरह वनस्पति में भी चेतना है और वे भी मिट्टी, हवा और पानी में खुराक लेती है ।

'शोमान' वैज्ञानिक ने लिखा है - 'वनस्पति और जंतु-रचना का मूल एक समान है ।'

'क्यारेबाय' वैज्ञानिक ने सिद्ध किया है कि 'अपनी तरह वनस्पति में भी आकुंचन शक्ति है, वे भी खनिजों को खींचकर उसे अपने आहार और शरीर के रूप में परिणत करती है ।'

जलचर प्राणियों की तरह कई वनस्पतियाँ भी स्नायु रहित होती हैं ।

'इत्थालीम' वनस्पति कीड़ों का भक्षण कर अपना जीवन टिकाती है। कई वनस्पति कीट-पतंगों की तरह मनुष्य का भी भक्षण कर लेती है ।

डार्विन वैज्ञानिक ने पंद्रह वर्षों तक संशोधन कर मांसभक्षी वनस्पति की सूची तैयार की है –

1. ड्रासीरा– इसे गुजराती में सूर्य शिशिर कहते हैं । यह वनस्पति भारत व इंगलैंड में पैदा होती है । इस वनस्पति के पत्ते भूमि को स्पर्श किए होते हैं । इसके पत्तों पर स्निग्धता होती है । मच्छर, मक्खी जैसे प्राणी उसका स्पर्श करते हैं वैसे ही वे चिपक जाते हैं । वे पत्ते उन जीव-जंतुओं पर अपना मारक रस डालते हैं, जिससे वे जंतु तुरंत मर जातेहैं । 4-6 घंटों में वे पत्ते संकुचित होते हैं, फिर 15-20 दिनों में वापस खिलते हैं, उसके काँटों में पुनः नया रस पैदा हो जाता है । ड्रासीरा वनस्पति मांस की तरह नाखून, बाल जैसे पदार्थों को भी आहार रूप में परिणत कर देती है ।

2. भांडा– पानी में तैरनेवाली यह मूल बिना की वनस्पति है । इसके पत्ते के चारों ओर कांटे होते हैं । उसके पास कोशग्रंथि होती है । जैसे ही कोई जंतु कोशग्रंथि को स्पर्श करते हैं, वैसे ही पत्ते के दो भाग बंद हो जाते हैं और उस जीव-जंतु का शोषण कर वह वनस्पति अपना पोषण करती है ।

बटरवट– इस पौधे में भी कीड़े को आकर्षित कर चिपका कर खत्म करने की घटना देखने को मिलती है ।

- न्युबीया वृक्ष पवन से कंपते समय Whistle व्हीसल की तरह आवाज़ करता है ।
- फिलीपाईंस में एक पौधे पर 9 फुट लंबा चौड़ा फूल दिखाई दिया था ।
- क्लोइ के एक बगीचे में 80 फुट ऊँचा व 15 फुट चौड़ा पौधा है । उस पौधे पर प्रतिवर्ष 50,000 गुलाब के फूल पैदा होते हैं ।
- बाँस- एक ही अंकुर में से अनेक बाँस पैदा होते हैं ।
- कलकत्ता के बोटेनिकल गार्डन में 250 वर्ष प्राचीन वट वृक्ष है, उसके तने का व्यास 13 फुट है ।
- कार्निवोरस प्लांट्स के पौधे त्रस जीवों को खा जाते हैं ।
- वेनस फ्लाइट्रेप और पिचर प्लांट पौधे भी कीड़ो को खा जाते हैं ।

◆ हर वनस्पति उगते समय जब अंकुर के रूप में होती है, तब साधारण वनस्पतिकाय होती है, उसके बाद वह प्रत्येक वनस्पतिकाय हो तो प्रत्येक हो जाती है और साधारण वनस्पति की जाति की हो तो साधारण ही रहती है ।

◆ मूले जैसी कई वनस्पति का मूल साधारण होता है और अन्य भाग प्रत्येक रूप होता है ।

◆ समूचे वृक्ष का एक स्वतंत्र जीव होता है और फल-फूल आदि का स्वतंत्र अलग जीव होता है ।

◆ साधारण वनस्पतिकाय के जीव एक ही शरीर में अनंत की संख्या में उत्पन्न होते हैं, वे एक साथ में आहार व श्वासोच्छवास लेते हैं । उन सभी जीवों का एक ही साधारण शरीर होता है। साधारण वनस्पतिकाय को अनंतकाय व निगोद भी कहा जाता है ।

साधारण वनस्पतिकाय –

साधारण वनस्पतिकाय के मुख्य दो भेद हैं –

(1) अव्यवहार राशि में रहे साधारण वनस्पतिकाय के जीव।

(2) व्यवहार राशि में रहे साधारण वनस्पतिकाय के जीव।

अव्यवहार राशि के जीव अनादि काल से साधारण वनस्पतिकाय में ही रहे हुए होते हैं । भरत आदि क्षेत्रों में से जब एक आत्मा शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करती है, तब एक आत्मा अव्यवहार राशि की निगोद में से बाहर निकलकर पृथ्वीकाय आदि रूप में उत्पन्न होती है। अव्यवहार राशि में से बाहर निकलने में जीव का पुरुषार्थ काम नहीं करता है, परंतु जीव की भवितव्यता ही वहाँ काम करती है।

एक बार भी जो आत्मा अव्यवहार राशि में से बाहर निकल जाती है, फिर वह आत्मा व्यवहार राशि की ही कहलाती है, भले ही वह आत्मा मरकर सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय में चली जाय। व्यवहार और अव्यवहार राशि दोनों में भव्य अभव्य दोनों प्रकार के जीव होते हैं ।

बादर साधारण वनस्पतिकाय

~~~~~~~~~~~~~~~~

प्रश्न 1- आलू में कितने जीव हैं ?

उत्तर – साधारण वनस्पतिकाय में एक शरीर की अवगाहना अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण है, अर्थात् असंख्य शरीर जब इकट्ठे होते हैं, तब वे चक्षु से ग्राह्य होते हैं ।

अर्थात् एक आलू में साधारण वनस्पतिकाय के असंख्य शरीर हैं। उन एक-एक शरीर में अनंत-अनंत जीव हैं। अनंत की वह संख्या कितनी है ? तो बतलाते हैं–
~~~~~~~~~~~~~~~~

👇👇👇👇👇👇👇👇

इस संसार में जितने सूक्ष्म व बादर पृथ्वीकाय के जीव हैं ।

इस संसार में जितने सूक्ष्म व बादर अप्काय के जीव हैं ।

इस संसार में जितने सूक्ष्म व बादर तेउकाय के जीव हैं ।

इस संसार में जितने सूक्ष्म व बादर वायुकाय के जीव हैं ।

इस संसार में जितने बादर प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीव हैं ।

इस संसार में जितने पर्याप्त-अपर्याप्त बेइन्द्रिय जीव हैं ।

इस संसार में जितने पर्याप्त-अपर्याप्त तेइंद्रिय के जीव हैं ।

इस संसार में जितने पर्याप्त-अपर्याप्त चउरिन्द्रिय के जीव हैं ।

इस संसार में जितने पर्याप्त-अपर्याप्त पंचेन्द्रिय देव जीव हैं ।

इस संसार में जितने पर्याप्त-अपर्याप्त पंचेन्द्रिय नारक जीव हैं ।

इस संसार में जितने पर्याप्त-अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव हैं ।

इस संसार में संमूर्च्छिम व गर्भज पंचेन्द्रिय मनुष्य के जीव हैं ।

इस सब का योग Total करने पर भी असंख्य ही होते हैं, उन सबसे अनंतगुणा जीव साधारण वनस्पतिकाय के एक शरीर में होते हैं। इस प्रकार कंदमूल के भक्षण में अनंत जीवों की हिंसा-विराधना रही हुई है ।

❌❌❌ प्रमाद से पतन ❌❌❌

चौदह पूर्वधर महर्षि भी प्रमाद के वश हो जाय तो पूर्वों का ज्ञान भूल जाते हैं और मिथ्यात्व के कारण अत्यंत आसक्तिपूर्वक रसनेन्द्रिय आदि के विषयों का सेवन करते हुए साधारण वनस्पति में पैदा हो जाते हैं, जहाँ अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल तक जन्म-मरण करते रहते हैं। सूक्ष्म निगोद में रही हुई ऐसी अनंत आत्माएँ हैं ।

पत्तेय तरुं मुत्तुं पंचवि पुढवाइणो सयल लोए ।
सुहुमा हवंति नियमा, अंतमुहुत्ताउ अद्दिस्सा ।।14 ।।

☘ शब्दार्थ -

शपत्तेयतरु = प्रत्येक वनस्पति
मुत्तुं = छोड़कर

पंचवि = पाँचों
पुढवाइणो = पृथ्वीकाय आदि
सयललोए = सकल लोक में
सुहुमा = सूक्ष्म
हवंति = होते हैं
नियमा = अवश्य
अंतमुहुत्ताउ = अन्तर्मुहूर्त्त के आयुष्य वाले
अद्दिस्सा = अदृश्य

☘ गाथार्थ - प्रत्येक वनस्पतिकाय को छोड़कर पृथ्वीकाय आदि पाँच (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और साधारण वनस्पतिकाय) अन्तर्मुहूर्त्त के आयुष्य वाले सूक्ष्म और अदृश्य संपूर्ण लोक में निश्चित रूप से होते हैं ।

☘ विवेचन - चौदह राजलोक रूप इस विश्व में सुई की नोंक जितना भी स्थान ऐसा नहीं है, जहाँ पृथ्वीकाय आदि पाँच सूक्ष्म जीव नहीं रहते हैं ।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय ये चारों सूक्ष्म और बादर दोनों होते हैं ।

वनस्पतिकाय के जो साधारण व प्रत्येक भेद हैं, उनमें साधारण वनस्पतिकाय सूक्ष्म व बादर दोनों रूप में मिलते हैं जबकि प्रत्येक वनस्पतिकाय सिर्फ बादर ही होती हैं, सूक्ष्म नहीं ।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, प्रत्येक वनस्पतिकाय और साधारण वनस्पतिकाय ये छः बादर रूपी भी हैं । अर्थात् इन जीवों के शरीर को आँखों से भी देख सकते हैं ।

इस प्रकार स्थावर में एकेन्द्रिय के कुल 5 सूक्ष्म और 6 बादर मिलाकर 11 भेद हुए । ये सभी पर्याप्त और अपर्याप्त रूप हैं, अतः एकेन्द्रिय के कुल 22 भेद हुए ।

🍁 सूक्ष्म - चाहे जितने जीव व शरीर इकट्ठे हो जायें तो भी जो चर्म चक्षु या यंत्र की मदद से देखे नहीं जा सकते हैं, उन्हें सूक्ष्म कहते हैं ।

🍁 बादर - जिस एक जीव या अनेक जीवों के शरीर को आँख या सूक्ष्म-दर्शक यंत्र के माध्यम से देखा या जाना जा सके, उसे बादर कहते हैं ।

🍁 समय - काल के अविभाज्य अंश, जिसे केवली भी पुनः दो भागों में विभाजित न कर सके, उसको समय कहा जाता है ।

🍁 मुहूर्त्त - दो घड़ी अर्थात् 48 मिनट के समय को मुहूर्त्त कहते हैं ।

🍁 अन्तर्मुहूर्त्त - दो घड़ी के भीतर के काल को अन्तर्मुहूर्त्त कहते हैं । 9 समय को जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और एक समय न्यून 48 मिनट को उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कहते हैं ।

पर्याप्तियों के छह भेद

(1) आहार पर्याप्ति - पुद्गलों के उपचय से उत्पन्न शक्ति से आहार ग्रहण कर उसे खल (कचरा) और रस के रूप में परिणमन करने की शक्ति को आहार पर्याप्ति कहते हैं । यहाँ खल शब्द से मल-मूत्रादि रूप असार पुद्गल और रस शब्द से सात धातु में परिणमन योग्य जल जैसा प्रवाही पदार्थ समझना चाहिए ।

(2) शरीर पर्याप्ति - जीव पुद्गलोपचय से उत्पन्न शक्ति द्वारा रस (प्रवाही) रूप में परिणत आहार को सप्त धातु रूप में परिणत करने की शक्ति को शरीर पर्याप्ति कहते हैं । इस पर्याप्ति द्वारा आत्मा रस को रक्त, मांस, चर्बी, हड्डी, मज्जा और वीर्य रस बनाकर उसे शरीर रूप में बनाते हैं ।

(3) इन्द्रिय पर्याप्ति - शरीर रूप में परिणत पुद्गलों में से इन्द्रिय योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर उसे इन्द्रिय रूप में परिणमन करने की शक्ति को इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं ।

(4) श्वासोच्छवास पर्याप्ति - श्वासोच्छवास योग्य पुद्गल वर्गणा को ग्रहण कर उसे श्वासोच्छवास रूप में परिणमन करने की शक्ति को श्वासोच्छवास पर्याप्ति कहते हैं । बाहर के वायु को शरीर में लेना और अंदर के वायु को बाहर निकालने को श्वासोच्छवास कहते हैं ।

(5) भाषा पर्याप्ति - आत्मा जिस शक्ति विशेष से भाषा योग्य वर्गणा (पुद्गलों) को ग्रहण कर उन्हें भाषा रूप में परिणत करती है, उस शक्ति को भाषा पर्याप्ति कहते हैं ।

(6) मनःपर्याप्ति - जिस शक्ति से आत्मा मनोयोग्य वर्गणा (पुद्गलों) को ग्रहण कर उन्हें मन रूप में परिणत करती है, उसे मनःपर्याप्ति कहते हैं ।

? किस जीव को कितनी पर्याप्ति ?

सभी संसारी जीव समस्त पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं करते हैं ।

(1) एकेन्द्रिय जीव की चार पर्याप्ति - आहार, शरीर, इन्द्रिय व श्वासोच्छवास को ही पूर्ण करते हैं । एकेन्द्रिय जीवों में भाषा व मन का अभाव होता है ।

(2) बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव, पाँच पर्याप्ति के योग्य होते हैं ।

(3) संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव सभी छः पर्याप्तियों को पूर्ण करते हैं ।

पर्याप्त जीव – जो जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को जब पूर्ण करता है तब वह जीव पर्याप्त कहलाता है । पर्याप्त जीव अपने योग्य सभी पर्याप्तियों को पूर्ण करने के बाद ही मृत्यु प्राप्त करता है ।

अपर्याप्त जीव – जो जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करने के पहले मृत्यु प्राप्त कर लेता है, उसे अपर्याप्त कहते हैं ।

ये सभी सूक्ष्म जीव अन्तर्मुहूर्त्त के आयुष्यवाले होते हैं ।

अपने हथियार या अग्नि द्वारा भी इन जीवों का छेदन-भेदन नहीं होता है ।

(त्रसकाय विवेचन)

स्थावर जीवों के वर्णन के बाद अब त्रस जीवों का वर्णन प्रारंभ करते हैं । त्रस अर्थात् सुख-दुःख आदि अवस्था में जो जीव अपने एक स्थान से अन्य स्थान में जा आ सकते हैं, उन्हें त्रस जीव कहते हैं। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये सभी त्रस कहलाते हैं।

बेइन्द्रिय जीव

संख कवड्डुय गंडुल, जलोय चंदणग अलस लहगाइ ।
मेहरि किमि पूयरगा बेइंदिय माइवाहाइ ।।15 ।।

शब्दार्थ – –

संख = शंख
कवड्डुय = कौड़ी
गंडुल = गंडोल- पेट में पैदा होनेवाले कीड़े
जलोय = जोंक
चंदणग = अक्ष
अलस = केंचुए
लहगाइ = लालयक आदि
मेहरि = काष्ठ के कीड़े
किमि = कृमि
पूयरगा = पौरे
बेइंदिय = दो इन्द्रिय वाले
माइवाहाइ = मातृवाहिका, आदि

गाथार्थ – शंख, कौड़ी, गंडोल, जोंक, अक्ष, भूनाग, लालयक, काष्ठ के कीड़े, कृमि, पूरा, मातृवाहिका आदि द्वीन्द्रिय जीव हैं ।

बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय को विकलेन्द्रिय भी कहते हैं ।

बेइन्द्रिय अर्थात् जिन जीवों के स्पर्शन इन्द्रिय और रसनेन्द्रिय रूप दो इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हें बेइन्द्रिय जीव कहते हैं ।

उपर्युक्त गाथा में बेइन्द्रिय जीवों के कुछ नाम निर्देश किए हैं –

(1) शंख – समुद्र में पैदा होनेवाले एक प्रकार के कीड़े को शंख कहते हैं । शंख छोटे-बड़े अनेक प्रकार के होते हैं । दक्षिणावर्त आदि शंखो को मंगल स्वरूप भी माना गया है । मंदिर व घरों में हमें जो शंख दिखाई देता है, वह तो शंख के जीव के रहने का घर है, जब यह शंख जीवित होता है तब उसमें बादामी रंग का कीड़ा होता है । समुद्र में जब ज्वार आता है, तब हजारों शंख समुद्र के किनारे आ जाते हैं और वे जीवित होते हैं।

(2) कोड़ा-कोड़ी – यह भी पानी में पैदा होता है । समुद्र व तालाब में छोटे-बड़े आकार में कोड़ा-कोड़ी जीव होते हैं । व्यवहार में जिन कौड़ियों का उपयोग होता है वे तो उन प्राणियों के मृत कलेवर हैं।

(3) गंडोल – पेट में पैदा होनेवाले बड़े कृमि को गंडोल कहते हैं।

(4) जोंक – यह भी पानी में पैदा होनेवाला कीड़ा है । दो-तीन इंच लंबा कीड़ा होता है । शरीर में बिगड़े हुए खून को चूसने का काम करता है।

(5) अक्ष –• यह भी शंख की तरह समुद्र में पैदा होता है । निर्जीव होने के बाद, गुरु-स्थापनाचार्य के रूप में इसका उपयोग किया जाता है।

(6) केंचुआ – वर्षा ऋतु में बरसात गिरने के साथ ही हजारों की संख्या में भूमि में से ये केंचुए पैदा हो जाते हैं । साँप के आकार के लाल रंग के होते हैं।

(7) लालायक - एक रात्रि प्रसार होने के बाद बासी रोटी, रोटले आदि में ये जीव पैदा हो जाते हैं ।

(8) मेहरि – ये कीड़े लकड़ी में पैदा होते हैं । इन्हें घुन के कीड़े भी कहते हैं।

(9) कृमि – पेट में, घाव में तथा मसे आदि में ये कीड़े पैदा होते हैं।

(10) पूरा – पानी जहाँ पड़ा रहता है, वहाँ ये कीड़े पैदा हो जाते हैं । इनका रंग लाल होता है और काला मुंह होता है।

(11) चूड़ेल – यह भी एक प्रकार का बेइन्द्रिय जीव है । इसके सिवाय भी अनेक बेइन्द्रिय जीव हैं।

(12) पानी में पैदा होनेवाली मोती की सीप भी बेइन्द्रिय जीव है।

(13) नाहरु - मनुष्य के हाथ-पैर में से लंबे-लंबे डोरे के समान निकलता है । खराब पानी पीने से ये जीव शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और फिर लंबे डोरे के समान बाहर निकलते हैं।

(14) द्विदल – दलहन के साथ जब कच्चे दूध, दही व छाछ का मिश्रण होता है, तब भी बेइन्द्रिय जीव पैदा हो जाते हैं ।

तेइन्द्रिय जीव

गोमी मंकण जूआ पिपीलि-उद्देहिया य मक्कोडा ।
इल्लिय घय मिल्लिओ सावय गोकीड जाइओ ।।16 ।।

गद्दहय चोरकीडा गोमय कीडा य धन्नकीडा य ।
कुंथु गोवालिय इलिया तेइंदिय इंदगोवाइ ।।17 ।।

शब्दार्थ– –

गोमी = कनखजूरा
मंकण = खटमल
जूआ = जूं
पिपीलि = चींटी
उद्देहिया = दीमक
मकोडा = मकोड़ा
इल्लिय = लट (अनाज में पैदा होने वाले कीड़े)
घयमिल्लीओ = घृतेलिका (घी में पैदा होने वाले कीड़े)
सावय = चर्मयूका
गोकीड जाइओ = गोकीट की जातियाँ
गद्दहय = गर्दभक (सफेद कीड़े)
चोरकीडा = विष्ठा के कीड़े
गोमयकीडा = गोबर के कीड़े
धन्नकीडा = अनाज के कीड़े
कुंथु = कंथवा
गोवालिय = गोपालिका
इलिया = ईलिका
तेइंदिय = तीन इंद्रियवाले
इंदगोवाइ = इंद्रगोप आदि
।।16-17।।

गाथार्थ– कनखजूरा, खटमल, जूं-लींख, चींटी, दीमक, मकोड़ा, लट, घृतेलिका, चर्मयूका, गोकीट की जातियाँ, गर्दभक, विष्ठा के कीड़े, गोबर के कीड़े, घुन, कुंथु, गोपालिका, सुरसली व इंद्रगोप आदि त्रीन्द्रिय जीव हैं।

विवेचन – बेइन्द्रिय के बाद अब तेइन्द्रिय जीवों का वर्णन करते हैं । इन जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय व घ्राणेन्द्रिय ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं । पृथ्वीतल पर अनेक प्रकार के तेइन्द्रिय जीव हैं । यहाँ कुछ जीवों के नाम निर्देश करते हैं।

(1) कानखजूरा– इसके बहुत से पैर होते हैं, यह भूमि पर चलता है।

(2) खटमल– लकड़ी की खाट, गद्दी, तकिये आदि में पैदा होते हैं । रात्रि में आकर मनुष्य का खून पीते हैं ।

(3)चींटी– लाल और काले रंग की होती है । लाल चींटी छोटी और काली चींटी बड़ी होती है । लाल चींटी एक बार चिपकने के बाद जल्दी निकलती नहीं है।

(4) दीमक– लकड़ी-कागज़ आदि में लगनेवाली उदई । दीवार या लकड़ी के कबाट में बाहर से मिट्टी की लाइन दिखती है । कागज़, कपड़े आदि को नष्ट कर देती है ।

(5) चींटा– काले रंग के इस कीड़े को मकोड़ा भी कहते हैं । गुड़-शक्कर के आसपास खूब पैदा होता है । शरीर पर चोंटने के बाद जल्दी उखड़ता नहीं है ।

कुमारपाल महाराजा ने एक मकोड़े को बचाने के लिए आसपास की चमड़ी काट ली थी।

(6) इल्ली - चावल आदि धान्य में पैदा होती है।

(7) घृतेलिका – घी में पैदा होने वाला जीव है ।

(8) जूं – मस्तक में बालों में पैदा होती है । मस्तक में काली व कपड़े में सफेद जूं पैदा होती है । शरीर के मैल से उत्पन्न होकर मनुष्य के सिर व कपड़े में उत्पन्न होती है।

(9) सावय – बाल के मूल में उत्पन्न होकर वहीं पर चिपक कर रहती है । संस्कृत में इसे चर्मयूका भी कहते हैं।

(10) गोकीट – कुत्ते आदि के कान में पैदा होता है।

(11) गर्दभक – गोशाला आदि की गीली मिट्टी में सफेद रंग के ये कीड़े पैदा होते हैं।

(12) चोरकीड़ा – भूमि में अपना मुँह करके गोलाकार छिद्र करनेवाले कीड़े चोरकीड़े कहलाते हैं ।

(13) गोमय कीड़ा – गाय आदि के गोबर में पैदा होनेवाले कीड़े गोमय कीड़े कहलाते हैं।

(14) अनाज के कीड़े – गेहूँ आदि अनाज में पैदा होनेवाले लाल रंग के कीड़े ।

(15) गोपालिका - एक अप्रसिद्ध कीड़ा ।

(16) ईलिका – गुड़-खांड में पैदा होनेवाली ईपल।

(17) इन्द्रगोप – चातुर्मास के प्रारंभ में वर्षा होने पर लाल रंग के कीड़े पैदा होते हैं । इनकी चाल खूब धीमी होती है । गुजराती में इसे गोकल गाय कहते है।

चउरिन्द्रिय जीव

चउरिंदिया य विच्छु ढिंकुण भमरा य भमरिया तिड्डा ।
मच्छिय डंसा मसगा कंसारी कविल डोलाइ ।।18।।

शब्दार्थ – –

चउरिंदिया = चार इन्द्रियवाले
य = और
विच्छु = बिच्छू
ढिंकुण = ढिंकूण
भमरा = भौंरा
य = और
भमरिया = ततैया
तिड्डा = तीड़
मच्छिय = मक्खी, मधुमक्खी

डंसा = डाँस
कंसारी = कंसारिका
मसगा = मच्छर
कविल = मकड़ी
डोलाइ = हरे रंग की टिड्डी ।

गाथार्थ – बिच्छु, ढिंकुण, भौंरा, बर्र, टिड्डी, मक्खी, मधु-मक्खी, डाँस, मच्छर, कंसारिका, मकड़ी और हरे रंग की टिड्डी आदि चार इन्द्रियवाले जीव हैं।

विवेचन – जिन जीवों के स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय और चक्षु इन्द्रिय ये चार इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हें चउरिन्द्रिय जीव कहते हैं।

दो इन्द्रियवाले जीवों को लगभग पाँव नहीं होते हैं । तीन इन्द्रियवाले जीवों को चार, छह या उससे अधिक पाँव होते हैं । चार इन्द्रियवाले जीवों को छह, आठ या उससे भी अधिक पाँव होते हैं।

तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रियवाले जीवों को आगे के भाग में मूंछों की तरह बाल होते हैं ।

उपर्युक्त गाथा में चउरिन्द्रिय जीवों के कुछ नामों का निर्देश किया है।

(1) बिच्छु – यह अपनी ऊँची पूछ से काटनेवाला जहरीला जंतु है । इसका जहर चढ़ने पर खूब वेदना होती है । छोटी-बड़ी साइज़ में अनेक प्रकार के होते हैं।

(2) ढिंकुण – पशुओं के शरीर पर बैठनेवाली एक प्रकार की मक्खी को ढिंकुण बगई कहते हैं।

(3) भ्रमर – छह पैर होने से इसे षट्पद भी कहते हैं । फूलों का रंग चूसने के कारण इसे मधुकर भी कहते हैं । इसका रंग खूब काला होता है । इसे भौंरा भी कहथे हैं।

(4) भमरी – यह पीले रंग की होती है और कहीं भी छत्ता बना देती है इसके काटने पर खूब पीड़ा होती है।

(5) तीड़ – ये समूह में पैदा होते हैं और एक दिशा में प्रवास करते हैं । खेत में आने पर सब पाक को खा जाते हैं।

(6) मक्खी – यह प्रसिद्ध प्राणी है । मधुमक्खी का भी इसी में समावेश हो जाता है।

(7) डाँस – वर्षा काल में इसकी उत्पत्ति होती है ।

(8) मच्छर - डाँस जैसा ही मनुष्य को काटनेवाला प्राणी है । मच्छर काटने से मलेरिया आदि भी हो जाता है।

(9) कंसारी – प्रसिद्ध कीटाणु है।

(10) टिड्डी – यह हरे रंग का प्राणी होता है । वर्षा ऋतु में मकई के खेत में पाया जाता है । मक्खी की तरह काटता है । गुजराती में इसे खड़माकड़ी भी कहते हैं।

☘ विकलेन्द्रिय के छह भेद ☘

विकलेन्द्रिय के बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय ये तीन भेद होते हैं । स्व योग्य पर्याप्ति को पूर्ण करके मरनेवालों को पर्याप्त और स्व योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं करनेवाले अपर्याप्त कहलाते हैं । इस प्रकार विकलेन्द्रिय के तीन पर्याप्त और तीन अपर्याप्त ये छह भेद होते हैं ।

पंचिंदिया य चउहा, नारय-तिरिया-मणुस्स देवा य ।
नेरइया सत्तविहा, नायव्वा पुढवी-भेएणं ।।19।।

शब्दार्थ – –

पंचिंदिया = पाँच इन्द्रियवाले
य = और
चउहा = चार प्रकार के
नारय = नारक
तिरिया = तिर्यंच
मणुस्स = मनुष्य
देवा = देव
य = और
नेरइया = नरक के जीव
सत्तविहा = सात प्रकार के
नायव्वा = जानने चाहिए
पुढवी = पृथ्वी
भेएण = भेद से

गाथार्थ – पाँच इन्द्रियवाले जीव चार प्रकार के है- नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव । पृथ्वी के भेद से नरक में रहनेवाले जीव सात प्रकार के जानने चाहिए ।

विवेचन – पाँच इन्द्रियवाले जीव चारों गति में पाए जाते हैं । उनमें नरक के जीव नरक पृथ्वी के भेद से सात प्रकार के बतलाए हैं ।

๑ सात नरकावास ๑

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय रूप द्रव्य जिस आकाश में रहते हैं, उसे लोकाकाश कहते हैं । यह लोकाकाश 14 राजलोक प्रमाण है । इस 14 राजलोक के बाहर अनंत आकाश है, उसे अलोकाकाश कहते हैं । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय के जितने प्रदेश हैं, उतने ही प्रदेश लोकाकाश के हैं, अर्थात् इन सभी के प्रदेश समान हैं । ये प्रदेश असंख्य है ।

अधोलोक में नरक के जीवों के रहने के लिए 7 पृथ्वियाँ हैं -

◆◆◆1 रत्नप्रभा ◆◆◆

इस पहली नरक पृथ्वी की एक राजलोक चौड़ाई तथा मोटाई 1,80,000 योजन है । उसमें 1000 योजन ऊपर और 1000 योजन नीचे की जगह छोड़ने पर जो 1,78,000 योजन बचते हैं, उसमें कुल 13 प्रत्तर आए हुए हैं, प्रत्येक प्रत्तर में नरकावास हैं । पहली नरक में कुल 30 लाख नरकावास हैं, उनमें नारक जीव पैदा होते हैं ।

असंज्ञी जीव सिर्फ पहली नरक में उत्पन्न हो सकते हैं । पहली नरक में जघन्य आयुष्य 10,000 वर्ष और उत्कृष्ट आयुष्य एक सागरोपम प्रमाण है । रत्नों की प्रधानता होने से इस पृथ्वी को रत्नप्रभा कहते हैं।

पहली नरक से निकला हुआ जीव तीर्थंकर व चक्रवर्ती बन सकता है । पहली नरक के जीवों को अशुभ कापोत लेश्या होती है।

◆◆◆ 2 शर्कराप्रभा ◆◆◆

इस दूसरी नरक पृथ्वी की चौड़ाई 2.5 राजलोक तथा मोटाई 1,32,000 योजन है । इस पृथ्वी के कुल 11 प्रत्तर हैं । इन 11 प्रत्तरों में कुल 25 लाख नरकावास हैं, जिनमें नरक के जीव उत्पन्न होते हैं । कंकड़ की प्रधानता होने से इस पृथ्वी को शर्कराप्रभा कहते हैं।

भुज परिसर्प जीव पहली व दूसरी नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं।

दूसरी नरक में जघन्य आयुष्य 1 सागरोपम और उत्कृष्ट आयुष्य 3 सागरोपम है।

दूसरी नरक से निकला हुआ जीव वासुदेव और प्रतिवासुदेव बन सकता है।

दूसरी नरक के जीवों को अशुभ कापोत लेश्या होती है ।

◆◆◆ 3 वालुकाप्रभा ◆◆◆

इस तीसरी नरक पृथ्वी की चौड़ाई चार राजलोक तथा मोटाई 1 लाख 28 हजार योजन है । इस पृथ्वी में 9 प्रत्तर और 15 लाख नरकावास हैं।

पहली तीन नरकों में पक्षी उत्पन्न हो सकते हैं । तीसरी नरक में जघन्य आयुष्य तीन सागरोपम और उत्कृष्ट आयुष्य सात सागरोपम है।

तीसरी नरक में से निकला हुआ जीव मनुष्यपने को प्राप्त कर यावत् तीर्थंकर बन सकता है।

इन नरक जीवों को कापोत-नील नामक अशुभ लेश्या होती है । रेती की प्रधानता होने से इस पृथ्वी को वालुका प्रभा कहते हैं।

◆◆◆ 4 पंकप्रभा ◆◆◆

चौथी नरक पृथ्वी की चौड़ाई पाँच राजलोक तथा मोटाई 1 लाख 20 हजार योजन है । इस पृथ्वी में 7 प्रत्तर और 1 लाख नरकावास है । जिसमें चौथी नरक के जीव उत्पन्न होते हैं।

चौथी नरक में जघन्य आयुष्य 7 सागरोपम और उत्कृष्ट आयुष्य 10 सागरोपम है।

सिंह एक से चार नरक तक उत्पन्न हो सकता है । चौथी नरक से निकला हुआ जीव सामान्य केवली होकर मोक्ष में जा सकता है।

इस नारक जीवों को अशुभ नील लेश्या होती है । कीचड़ की प्रधानता होने से इस पृथ्वी को पंकप्रभा कहते हैं।

5 धूमप्रभा

धूमप्रभा पृथ्वी की चौड़ाई छः राजलोक तथा मोटाई 1 लाख 18 हजार योजन प्रमाण है । इस पृथ्वी में 5 प्रत्तर व तीन लाख नरकावास है । जहाँ 5वीं नरक के जीव उत्पन्न होते हैं।

5 वीं नरक में जघन्य आयुष्य 10 सागरोपम व उत्कृष्ट आयुष्य 17 सागरोपम है।

सर्प व उर परिसर्प आदि 5वीं नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं । धुएँ की प्रधानता होने से इस पृथ्वी को धूमप्रभा कहते हैं।

इन नारक जीवों के नील-कृष्ण अशुभ लेश्या होती है।

6 तमःप्रभा

इस नरक पृथ्वी की चौड़ाई 6.5 राजलोक तथा मोटाई 1 लाख 16 हजार है योजन है । छठीं नरक के तीन प्रत्तरों में 99,995 नरकावास है।

छठीं नरक में जघन्य आयुष्य 17 सागरोपम और उत्कृष्ट आयुष्य 22 सागरोपम है।

छठीं नरक के जीवों के अशुभ कृष्ण लेश्या होती है । स्त्रियाँ छठीं नरक तक उत्पन्न हो सकती है।

इन नारक जीवों को तीव्रतम अशुभ कृष्ण लेश्या होती है । छठीं नरक से निकला हुआ देशविरति प्राप्त कर सकता है, किन्तु सर्वविरति आदि की भूमिका को नहीं । घुन की प्रधानता होने से इस पृथ्वी को तमःप्रभा कहते हैं।

7 महातमःप्रभा

इस नरक पृथ्वी की चौड़ाई सात राजलोक प्रमाण तथा मोटाई 1 लाख 8 हजार योजन है । 7वीं नरक में 1 प्रत्तर और 5 नरकावास है।

7वीं नरक में जघन्य आयुष्य 22 सागरोपम और उत्कृष्ट आयुष्य 33 सागरोपम है।

7वीं नरक में रहे जीवों को अतितीव्र कृष्ण लेश्या होती है । सातवीं नरक से निकला हुआ जीव सम्यग्दर्शन पा सकता है । गाढ़ अंधकार की प्रधानता होने से इस पृथ्वी को महातमःप्रभा कहते है।

तंदुलिक मत्स्य व मनुष्य आदि मरकर पहली से सातवीं नरक में उत्पन्न हो सकते हैं।

ये सभी 7 पृथ्वियाँ घनांबु, घनवात, तनुवात और आकाश के आधार पर रही हुई हैं । घनांबु अर्थात् घन पानी और घनवात अर्थात् घन वायु, तनवात अर्थात् पतला वायु !

सबसे नीचे आकाश है, आकाश के आधार पर तनुवात है, तनुवात के आधार पर घनवात है, उसके ऊपर महातमःप्रभा पृथ्वी है । उसके बाद इसी क्रम से आकाश, तनुवात, घनवात और घनोदधि (घनांबु) रहा हुआ है और उसके ऊपर छठीं नरक पृथ्वी रही हुई है । इसी क्रम से पहली नरक-पृथ्वी तक समझ लेना चाहिए।

सात नरकों में कुल 84 लाख नरकावास है ।

नरकावास तीन प्रकार के होते हैं–

(1) इन्द्रक, (2) पंक्तिगत और 3) पुष्पावकीर्ण।

एकदम मध्य में आए नरकावासों को इन्द्रक कहते हैं ।

दिशा-विदिशा में पंक्तिबद्ध नरकावासों को पंक्तिगत कहते हैं ।

बिखरे हुए फूलों की भांति इधर-उधर रहे नरकावासों को पुष्पावकीर्ण कहते हैं ।

इन्द्रक नरकावास गोल होते हैं । पंक्तिगत नरकावास त्रिकोण-चतुष्कोण आदि होते हैं। पुष्पावकीर्ण नरकावास भिन्न-भिन्न प्रकार के अशुभ आकारवाले होते हैं ।

सभी नरकावासों की ऊँचाई तीन हजार योजन होती है ।

कुछ नरकावास संख्याता योजन लंबे-चौड़े और कुछ असंख्यात योजन लंबे-चौड़े होते हैं ।

पहले नरक में पहला सीमंतक नरकावास 45 लाख योजन लंबा-चौड़ा है तथा 7वीं नरक में रहा अप्रतिष्ठान -इंद्रक नरकावास 1 लाख योजन लंबा-चौड़ा है।

नरक जीवों की वेदना

(1) क्षेत्रकृत वेदना –7 नरकावासों में ज्यों-ज्यों नीचे जाते हैं त्यों-त्यों चारों ओर गाढ़ अंधकार होता है । श्लेष्म, मल-मूत्र, खून, मांस, चर्बी आदि जैसे स्वाभाविक अशुभ पृथ्वी के परिणामों से नरकावास की भूमि व्याप्त होती है । शमशान की भूमि में रहे हड्डी, मांस, दाँत, चमड़े आदि के ढेर की तरह सर्वत्र भयंकर दुर्गंध रही होती है । वास्तव में, नरक में हड्डी, मांस आदि अशुभ पदार्थों के ढेर तो नहीं हैं, परंतु उस पृथ्वी पर रही अशुचि व दुर्गंधपूर्ण वातावरण को समझाने के लिए ये उपमाएँ दी गई है । अर्थात् उन पृथ्वियों पर स्वाभाविक ही इस तरह का वातावरण होता है।

मरे हुए कुत्ते, सियार, सांप, नेवले, चुंडे, हाथी, घोड़े व मनुष्य के मुर्दों की तरह सर्वत्र दुर्गंध फैली हुई होती है। भयंकर वेदना के कारण नरक के जीव सतत् चिल्लाते रहते हैं .... भयंकर करुण विलाप करते हैं .... करुण चीत्कार करते हैं।

नरक के जीवों के शरीर, शरीर के अवयव, आकार, रूप, रस, गंध, स्वाद आदि अत्यंत खराब होते हैं। उन्हें देखते ही घृणा पैदा होती है। अत्यंत दयनीय उनकी रचना होती है। उनके शरीर के सभी अवयव बेडौल होते हैं।

(2) नरक में उष्ण वेदना – ज्येष्ठ मास के गर्मी के दिनों में रेगिस्तान की मरुभूमि में चारों ओर लू (गर्म हवा) चल रही हो, आकाश में एक भी बादल न हो, मध्याह्न का सूर्य आग बरसा रहा हो, चारों ओर अग्नि प्रज्वलित हो, ऐसी स्थिति में पित्त प्रकृति वाले मनुष्य को जो उष्ण वेदना होती है, उससे अनंतगुणी वेदना नरक में होती है।

ऐसे उष्ण वेदना भोग रहे नारक जीव को नरक भूमि में से उठाकर टाटा की सुलगती हुई भट्टी के पास भयंकर गर्मी के दिनों में लाकर सुला दिया जाय तो भी उसे गाढ़ निद्रा आ जाती है।

इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि नरक में कितनी गाढ़ उष्ण वेदना होती होगी।

(3) नरक में शीत वेदना – पौष मास की ठंडी के दिनों में हिमालय पर्वत पर, जहाँ चारों ओर बर्फ गिर रहा हो, तीव्रगति से ठंडी-ठंडी हवा चल रही हो, ऐसे ठंडे वातावरण में हाथ-पैर काँपते हुए... ठंडी से जिसका पूरा शरीर कँप रहा हो, ऐसे कमजोर मनुष्य को खुले बदन रखा जाय और जिस शीत-वेदना का अनुभव होता है, उससे अनंतगुणी शीत-वेदना नरक में होती है।

नरक में शीत-वेदना सहन कर रहे नारक जीव को नरक में से उठाकर पौष मास में गिरते हुए हिमालय पर्वत पर खुले शरीर सुला दिया जाय तो उसे तत्काल नींद आ सकती है, इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि नरक में कितनी भयंकर शीत वेदना होती होगी !
पहली, दूसरी व तीसरी नरक में अत्यंत उष्ण वेदना होती है ।

चौथी नरक में अधिकांश नारकों को उष्ण वेदना व कुछ को शीत वेदना होती है ।

पाँचवी नरक में अधिकांश नारकों को शीत वेदना तथा कुछ को उष्ण वेदना होती है ।

छठीं-सातवीं नरक में सिर्फ शीत वेदना होती है।

◆अशुभ-परिणाम – नरक में पुद्गलों का परिणमन अत्यंत ही अशुभ होता है।

(1) बंधन – शरीर के साथ संबंध में आनेवाले पुद्गल अत्यंत ही अशुभ होते हैं।

(2) गति – नरक के जीवों को अप्रशस्त विहायोगति नामकर्म का उदय होने से चाल ऊँट आदि की तरह अप्रशस्त होती है।

(3) संस्थान – नारक जीवों की आकृति तथा भूमि की रचना अत्यंत उद्वेगकारक होती है।

(4) भेद – शरीर में से निकलने वाले पुद्गल अत्यंत अशुभ होते हैं।

(5) वर्ण – सर्वत्र अंधकार छाया रहता है, तल भाग भी श्लेष्म आदि की तरह अत्यंत ही अशुचि पदार्थों से लिप्त होता है।

(6) गंध – नरक की भूमि में सर्वत्र मल-मूत्र-मांस आदि जैसी तीव्र दुर्गंध होती है।

(7) रस – नरक के पदार्थों का रस नीम से भी अधिक कड़वा होता है।

(8) स्पर्श – नरक के पदार्थों का स्पर्श उष्ण और बिच्छु के डंक से भी अधिक पीड़ाकार होता है।

(9) अगुरुलघु – शरीर का अगुरुलघु परिणाम भी अनिष्टदायी होता है।

(10) शब्द – 'बचाओ ! बचाओ !' आदि करुण शब्द, सर्वत्र सुनाई देते हैं।

🔷अशुभ देह – वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों से बना हुआ होने पर भी नरक के जीवों का शरीर देवताओं की तरह सुन्दर नहीं होता है, बल्कि अत्यंत ही खराब होता है । नरक के जीवों को हुंडक संस्थान होता है । उनके शरीर का वर्ण अतिशय श्याम व भय उत्पन्न करने वाला होता है।

🔷क्षुधावेदना – जगत् में रहे समस्त अनाज का भक्षण कर दे, घी-दूध आदि का पान कर दे तो भी क्षुधा शांत न हो, इससे भी अधिक क्षुधा नरक के जीवों को होती है।

🔷तृषा वेदना – जगत् के सभी समुद्रों को पी जाय तो भी तृषा शांत न हो... उससे भी अधिक तृषा नरक के जीवों को होती है।

🔷खुजली की पीड़ा – छुरी आदि से खुजलाने पर भी शांत न हो ऐसी खुजली की पीड़ा नरक के जीवों को सतत् रहती है।

🔷ज्वर – मनुष्य को होनेवाले ज्वर से अनंतगुणा ज्वर उन्हें जीवनपर्यन्त रहता है।

🔷पराधीनता – नरक के जीवों को सतत् परमाधामी आदि के अधीन रहना पड़ता है।

🔷दाह – नरक के जीवों के शरीर में भयंकर दाह सदैव रहता है।

🔷भय – अवधिज्ञान या विभंगज्ञान द्वारा आगामी दुःख को देखने के कारण नरक के जीव सतत् भयभीत रहते हैं।

🔷 शोक – दुःख, भय आदि के कारण सतत् शोकातुर रहते।

🔷अशुभ विक्रिया – अशुभ नामकर्म का उदय होने से नरक के जीव जो उत्तर वैक्रिय शरीर बनाते हैं, वह अशुभ ही बनता है।

🔷पारस्परिक पीड़ा🔷

जिस प्रकार एक मोहल्ले में रहने वाला कुत्ता दूसरे मोहल्ले में चला जाय तो उस मोहल्ले में रहे हुए सभी कुत्ते उस पर एक साथ टूट पड़ते हैं और उसे घायल कर देते हैं, बस इसी प्रकार नारक जीव भी क्रोधाग्नि से परस्पर लड़ते रहते हैं । वे वैक्रिय रूप करके क्षेत्रप्रभाव से उत्पन्न, पृथ्वी कंप अथवा वैक्रिय भाले, तलवार, बाण तथा हाथ-पैर आदि से परस्पर प्रहार करते रहते हैं । शरीर का छेदन-भेदन होने पर तड़पते रहते हैं।

हाँ, परस्पर पीड़ा देने का काम मिथ्यादृष्टि नारक जीव ही करते हैं । नरक में जो सम्यग्दृष्टि नारक जीव होते हैं, वे तो अपने अशुभ कर्म का उदय समझ कर दूसरों के द्वारा दी गई पीड़ा को समतापूर्वक सहन करते हैं और कर्मों का क्षय करते हैं वे नए कर्म नहीं बाँधते हैं, जबकि जो मिथ्यादृष्टि नारक होते हैं वे तो अपने विभंगज्ञान द्वारा अपने पूर्व भव के वैरियों को पहिचान कर उन्हें कष्ट देते रहते हैं, स्वयं कष्ट सहते हैं और नवीन कर्मों का बंध करते रहते हैं ।

🙏♂ परमाधार्मिक कृत पीड़ा 🙏♂

भुवनपति निकाय में 15 परमाधार्मिक देव हैं । ये देव अत्यंत अधर्मी होने से परमाधार्मिक कहलाते हैं । ये अत्यंत पापी और निर्दयी होते हैं । पूर्व भव में पंचाग्नि तप आदि के प्रभाव से उन्हें देवलोक आदि की प्राप्ति हुई होती है । ये देवता पहली तीन नरक के नारकों को भयंकर कष्ट देते हैं, कष्ट देने में ही इन्हें अत्यंत आनंद आता है।

परमाधार्मिक देवता भव्य जीव होते हैं । वे मरकर अंडगोलिक नामक जलमनुष्य बनते हैं । उनके अंडगोलों को लेने के लिए उन्हें पकड़ा जाता है और वज्र की घंटी में छः मास तक पीला जाता है । भयंकर वेदना सहनकर मरकर नरक में जाते हैं और पुनः नरक की पीड़ा सहन करते हैं।

(1) अंब – ये परमाधामी क्रीड़ा द्वारा विविध प्रकार के भय पैदा कर नरक के जीवों को डराते हैं । नारकों को आकाश में उछालते हैं और नीचे गिरते समय वज्रमय भालों से बींधते है और मुद्गर से तीव्र प्रहार करते हैं।

(2) अंबर्षि – ये परमाधामी मूर्च्छित बने नारक जीवों के शरीर के अंगों को काटते और शाक की तरह पकाते हैं।

(3) श्याम – ये परमाधामी नारक जीवों के अंगों को छेदकर बॉल की तरह उछालते हैं, चाबुक से प्रहार करते हैं और पैरों से रोंदते हैं।

(4) शबल – ये परमाधामी नारक जीवों के पेट आदि को चीरकर उनकी आँखें आदि बाहर निकालकर उन्हें बताते हैं।

(5) रूद्र – ये परमाधामी दौड़ते हुए आते हैं, तलवार चलाते हैं, त्रिशूल, वज्र आदि से बींधते हैं और आग में डालते है।

(6) उपरूद्र – ये परमाधामी नारक जीवों के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके अत्यंत वेदना उत्पन्न करते हैं।

(7) काल – ये परमाधामी नरक के जीवों को मछलियों की तरह पकाते हैं।

(8) महाकाल– ये परमाधामी नारक जीवों के शरीर के मांस को काटकर उन्हीं को खिलाते हैं।

(9) असि– ये परमाधामी तलवार आदि शस्त्रों द्वारा नरक जीवों के हाथ पैर मस्तक आदि अंगों को काटकर छिन्न-भिन्न कर देते हैं।

(10) पत्रधनु– ये परमाधामी असिपत्र वन की रचना करते हैं । छाया के अभिलाषी नारक जीव वहाँ जाते हैं। उस समय ये परमाधामी पवन फूंकते हैं । उस समय वृक्ष पर से पत्ते नीचे गिरते हैं और नारक जीवों के हाथ-पैर आदि को काटते हैं, उनमें से खून बहता है।

(11) कुंभ– ये परमाधामी नारक जीवों को कुंभ आदि में उबलते हुए तेल में भजिए की तरह पकाते हैं।

(12) वालुका– ये परमाधामी नारक जीवों को भट्टी की रेती से अनंतगुणी तपी हुई कदंबवालुका नाम की पृथ्वी में चने की तरह भूंजते हैं ।

(13) वैतरणी– ये परमाधामी वैतरणी नदी की रचना करते हैं, जिसमें उबलते लाक्षारस का तेज प्रवाह बहता है, उसमें चर्बी, खून, हड्डी आदि बहते हैं । इस नदी में उन नारकों को चलाया जाता है और अत्यंत तपी हुई लोहे की नाव में उन नारकों को बिठाते हैं।

(14) खरस्वर– ये परमाधामी कठोर शब्दों से चिल्लाते हुए आते हैं और नारकों के पास परस्पर चमड़ी उतरवाते हैं और स्वयं नारकों के शरीर को करवत से चीरते हैं । तीक्ष्ण काँटों से भरपूर शाल्मली वृक्षों के ऊपर नारकों को चढ़ाते हैं।

(15) महाघोष– ये परमाधामी गगनभेदी आवाज से नारकों को डराते हैं । भय से भागते हुए नारकों को पकड़कर वधस्थान में उन्हें अनेक प्रकार की पीड़ा पहुंचाते हैं । ये परमाधामी नारक जीवों को छेदन-भेदन करके, आग में जलाकर, शिलाओं पर पछाड़कर कष्ट देते हैं, फिर भी वे मरते नहीं हैं, उनके अंगोपांग पुनः जुड़ जाते हैं । मौत को चाहते हुए भी निकाचित आयुष्य का उदय होने के कारण वे प्रहार आदि से मरते नहीं हैं, आयुष्य पूरा होने पर ही मौत होती है।

नरक आयुष्य का बंध

~~~~~~~~~~~~~~~~~~

किसी भी जाति के देवता या नरक के जीव मरकर नरक में नहीं जाते हैं अर्थात् वे आगामी भव का नरक आयुष्य का बंध नहीं करते हैं।

मिथ्यादृष्टि, महारंभी, महापरिग्रही मांसाहारी, पंचेन्द्रिय प्राणियों का वध करनेवाला, तीव्रक्रोधी, रौद्र परिणामी जीव नरक-आयुष्य का बंध करता है ।

संघयण और नरक

~~~~~~~~~~~~~~~~~~

(1) वज्रऋषभनाराच संघयण सातों नरक में जा सकता है।

(2) ऋषभनाराच छः नरक तक जा सकता है।

(3) नाराच संघयण वाला पाँच नरक तक जा सकता है।

(4) अर्धनाराच संघयण वाला चौथी नरक तक जा सकता है।

(5) कीलिका संघयण वाला तीसरी नरक तक जा सकता है।

(6) सेवार्त संघयण वाला दूसरी नरक तक जा सकता है।

नरक जीवों का भव धारणीय व उत्तर वैक्रिय शरीर

👇👇👇👇👇👇👇

पहली नरक –
भवधारणीय शरीर - 7 3/4 धनुष्य 6 अंगुल
उत्तर वैक्रिय - 15 1/2 धनु 12 अंगुल

दूसरी नरक –
भवधारणीय शरीर - 15 1/2 धनुष्य 12 अंगुल
उत्तर वैक्रिय - 31 1/4

तीसरी नरक –
भवधारणीय शरीर - 31 1/4
उत्तर वैक्रिय - 62 1/2

चौथी नरक –
भवधारणीय शरीर - 62 1/2
उत्तर वैक्रिय - 125

पाँचवी नरक –
भवधारणीय शरीर - 125
उत्तर वैक्रिय - 250

छठी नरक –
भवधारणीय शरीर - 250
उत्तर वैक्रिय - 500

सातवीं नरक –
भवधारणीय शरीर - 500
उत्तर वैक्रिय - 1000

पंचेन्द्रिय तिर्यंच

जलयर-थलयर-खयरा तिविहा पंचिंदिया तिरिक्खा य ।
सुसुमार-मच्छ-कच्छव गाहा मगरा य जलचारी ।।20।।

शब्दार्थ – –

जलयर = जल में चलने वाले
थलयर = स्थल पर चलने वाले
खयरा = आकाश में उड़ने वाले

तिविहा = तीन प्रकार के
पंचिदिया = पंचेन्द्रिय
तिरिक्खा = तिर्यंच
य = तथा
सुसुमार = मगरमच्छ की जाति
मच्छ = मत्स्य
कच्छव = कछुआ
गाहा = ग्राह
मगरा = मगरमच्छ
जलचारी = जलचर प्राणी

भावार्थ– पंचेन्द्रिय तिर्यंच के तीन प्रकार हैं, जलचर, स्थलचर और खेचर । उसमें शिशुमार मत्स्य, कच्छप, ग्राह और मगर जलचर प्राणी हैं।

विवेचन– जो प्राणी तिरछे आथवा टेढ़े-मेढ़े चलते हैं तिर्यंच कहलाते हैं । मनुष्य का मस्तक ऊँचा होता है, जबकि गाय, घोड़े, गधे आदि का सदैव नीचे झुका हुआ होता है।

देव, मनुष्य और नारक के जीव पंचेन्द्रिय ही होते हैं जबकि तिर्यंच एक इन्द्रियवाले, दो इन्द्रियवाले, तीन इन्द्रियवाले, चार इन्द्रियवाले और पाँच इन्द्रियवाले भी होते हैं।

जीवों में सबसे अधिक विविधता तिर्यंचों में ही पाई जाती है।

उपर्युक्त गाथा में पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के मुख्य तीन भेद बतलाए हैं।

पशु-पक्षियों में भी अनेक विशेषताएँ देखने को मिलती हैं । सिंह में पराक्रम है तो हाथी में कायबल और बुद्धि चातुर्य है । घोड़े में तीव्र रफ्तार है तो बैल में वजन ढोने की क्षमता है, बंदर में चपलता है तो कुत्ते में वफादारी है।

वर्तमान वैज्ञानिक कहते हैं कि इस पृथ्वी पर 8000 प्रकार के पशु व 8000 प्रकार की पक्षी की जातियाँ उपलब्ध हैं ।

तिर्यंच के मुख्य तीन भेद बतलाए हैं–

(1) जलचर– जो प्राणी मुख्यतया जल में ही रहते हैं अथवा जल में ही गति करते हैं, वे जलचर कहलाते हैं।

(2) स्थलचर– जो प्राणी पृथ्वी पर चलते हैं, वे स्थलचर कहलाते हैं।

(3) खेचर– जो प्राणी आकाश में गति करते हैं, वे खेचर कहलाते हैं।

उपरोक्त गाथा में जलचर प्राणियों के कुछ दृष्टांत बतलाए हैं –

(1) सिंसुमार– यह एक प्रकार के मगरमच्छ की जाति है । यह प्राणी मोटी साइज में होता है । भैंसे, घोड़े, सिंह व मनुष्य के आकार में भी ये प्राणी पाए जाते हैं।

(2) मत्स्य– चाँदी व सोने के बाह्य कांतिवाले ये मत्स्य अनेक प्रकार के होते हैं । कई मछलियों के शरीर में से बिजली जैसा प्रकाश भी निकलता है।

☞ कई मत्स्य खूब बलवान भी होते हैं । अपने पिछले भाग के बल से बड़े-बड़े वाहनों को भी उल्टा कर देते हैं।

☞ स्वयंभूरमण में अनेक प्रकार के मत्स्य पाए जाते हैं । जिन प्रतिमा के आकार के भी मत्स्य होते हैं, जिन्हें देखकर अन्य कई प्राणियों को जातिस्मरण ज्ञान भी हो जाता है और वे सम्यग्दर्शन व देशविरति धर्म भी पा लेते हैं।

☞ कहते हैं कि चूड़ी और...नलिये के आकार को छोड़कर अन्य सभी आकार के मत्स्य स्वयंभूरमण समुद्र में पाए जाते हैं।

कई अज्ञानी लोग मत्स्यों को सामुद्रिक वनस्पति कहकर, मानकर उनका भक्षण भी करते हैं। परंतु वास्तव में देखा जाय तो मत्स्य पंचेन्द्रिय प्राणी है । उसमें हर प्रकार की संवेदनाएँ होती है।

(3) कुछआ– सामान्यतया कछुआ पानी में रहता है, परंतु कभी-कभी नदी, तालाब के तट पर भी आता है । इसके चार पैर व लंबी गर्दन होती है। इसके शरीर का Cover अत्यंत ही कठोर होता है । मोटर का पहिया भी ऊपर घूम जाय तो भी उसका बाल भी बाँका नहीं होता है । किसी भी शत्रु को आते देख वह अपनी गर्दन व पाँव को अपने भीतरी भाग में छिपा देता है।

संयमी महात्मा व इन्द्रिय विजेता को कछुए की उपमा भी दी जाती है।

(4) ग्राह– जलचर प्राणियों में यह सबसे भयंकर प्राणी होता है । कोई भी इसके जाल में फँस जाने के बाद आसानी से बाहर नहीं निकल सकता है । इसे जलराक्षस भी कहते हैं।

(5) मगर– इसके दाँत अत्यंत ही तीक्ष्ण होते हैं । बड़े-बड़े तालाबों व समुद्र में मगरमच्छ पाए जाते हैं। पानी में इसका बल अधिक होता है।

चउप्पय उरपरिसप्पा भुयपरिसप्पा य थलयरा तिविहा ।
गो-सप्प-नउल-पमुहा बोधव्वा ते समासेण ।।21 ।।

शब्दार्थ– –

चउप्पय = चार पैर वाले
उरपरिसप्पा = छाती से चलने वाले
भुयपरिसप्पा = भुजाओं से चलने वाले
थलयरा = स्थलचर
तिविहा = तीन प्रकार के
गो = गाय
सप्प = साँप
नउल = नेवला
पमुहा = प्रमुख
बोधव्वा = जानने चाहिए

ते = वे
समासेण = संक्षेप में

भावार्थ – स्थलचर के तीन भेद हैं- चतुष्पद, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प ! इनके क्रमशः गाय, साँप और नेवला दृष्टांत संक्षेप में समझने चाहिए ।

विवेचन - इस गाथा में स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के तीन भेद बतलाए हैं।

❋चतुष्पद - जो अपने चार पैरों से पृथ्वी पर चलते हैं, वे चतुष्पद कहलाते हैं ।

❋उरपरिसर्प - जिनके पैर नहीं होते हैं, परंतु जो छाती के बल पर रेंगकर चलते हैं वे उरपरिसर्प कहलाते हैं । यहीं मूल गाथा में साँप के नाम का निर्देश किया है, परंतु यहाँ भी आदि पद से अजगर आदि पेट के बल पर चलने वाले सभी प्राणियों का समावेश समझ लेना चाहिए।

❋भुजपरिसर्प– अपनी भुजाओं के बल पर चलनेवाले प्राणी, भुजपरिसर्प कहलाते हैं । यहाँ दृष्टांत के रूप में नेवले का निर्देश किया है । यहाँ भी आदि पद से चूहा, गिलहरी, गिरगिट आदि सभी प्राणियों का समावेश समझ लेना चाहिए।

चतुष्पद तिर्यंच भी दो प्रकार के होते हैं–

(1) पालतू पशु– जो पशु मनुष्य की आज्ञा में रहते हैं और मनुष्य के कार्यों में हाथ बँटाते हैं, वे पालतु पशु कहलाते हैं । जैसे - गाय, बैल, भैंस, बकरी आदि।

(2) जंगली पशु– जो जंगल में रहते हैं । अधिकांशतः माँसाहारी होते हैं । जैसै - सिंह, बाघ, चीता आदि।

उरपरिसर्प में साँप की भी कई जातियाँ हैं । कई साँप फणवाले और कई सर्प फण रहित भी होते हैं । कई साँपों की दाढ़ाओं में विष होता है, उन्हें आशीविष सर्प कहते हैं।

कई साँपों की दृष्टि में विष होता है, उन्हें दृष्टिविष सर्प कहते हैं । चंडकौशिक साँप दृष्टिविष साँप था, उसकी दृष्टि में ही ज़हर था।

कई साँपों का ज़हर भयंकर होता है, उन्हें उग्रविष सर्प कहते हैं।

आज के वैज्ञानिक कहते हैं कि साँप की कुल 700 जातियाँ हैं ।उनमें कई जहरीले भी हैं और कई ज़हर रहित भी है।

साँप भी पंचेन्द्रिय प्राणी है । कान के स्थान पर शून्य जैसी आकृति होती है । साँप भी मधुर ध्वनि को सुनकर डोलने लगता है। साँप के दो जीभ होती है। साँप सिर्फ पवन के आधार पर लंबे समय तक जी सकता है, इसलिए उसे 'पवनभुक्' भी कहते हैं। साँप के पैर नहीं होते हैं, परंतु उसके शरीर में हड्डियों की रचना इस प्रकार होती है कि वह आसानी से कहीं भी वृक्ष आदि के ऊपर चढ़ सकता है।

अजगर की काया खूब लंबी होती है । 20 से 40 फुट तक उसकी लंबाई होती है । वह भूरे रंग का होता है और उसके शरीर पर बादामी रंग के धब्बे होते हैं।

भुजपरिसर्प– अपनी भुजाओं के बल से चलने वाले । यहाँ भुजा शब्द से आगे के दो पाँव ही समझना चाहिए । उन जीवों के पीछे भी दो पाँव होते हैं, परंतु वे उतने विकसित नहीं होते हैं।

उदाहरण - नेवला, चूहा, गिलहरी आदि।

नेवला साँप का आजन्म वैरी दुश्मन कहलाता है । युद्ध में वह साँप को भी हरा देता है।

चूहा प्रसिद्ध प्राणी है।

गिरगिट अपने रंग बदलने में होशियार होता है।

खयरा रोमय-पक्खी, चम्मय पक्खी पायडा चेव ।
नरलोगाओ बाहिं समुग्गपक्खीवियय-पक्खी ।।22 ।।

शब्दार्थ —

खयरा = खेचर (पक्षी)
रोमय पक्खी = रोमज पक्षी
चम्मय पक्खी = चर्मज पक्षी
पायडा = प्रगट
चेव = निश्चय
नरलोगाओ = मनुष्य लोक से
बाहिं = बाहर
समुग्गपक्खी = बंद पंखवाले
वियपक्खी = खुली पंखवाले

भावार्थ- - पक्षी दो प्रकार के हैं–

(1) रोमज पक्षी और (2) चर्मज पक्षी।

ये दोनों प्रकार प्रसिद्ध हैं । मनुष्य क्षेत्र के बाहर बंद पंखवाले और खुली पंखवाले पक्षी होते हैं।

विवेचन – जलचर एवं स्थलचर के वर्णन के बाद अब खेचर का वर्णन करते हैं । पंख से युक्त जिन प्राणियों में उड़ने की शक्ति हैं, उन्हें खेचर पक्षी कहते हैं।

यहाँ पंख के आधार पर पक्षियों के दो भेद किए हैं–

(1) रोमज पक्षी– जिनके पंख रोम से बने होते हैं, उन्हें रोमज पक्षी कहते हैं । इनमें कौआ, कबूतर, चिड़िया, पोपट, कोयल, मोर, मुर्गा, बाज, गरुड़, तीतर, बतख, हंस, सारस आदि पक्षियों का समावेश होता है।

इनमें से कई पक्षियों के पंख अत्यंत ही सुन्दर व आकर्षक होते हैं । कई पक्षी अपने मधुर कंठ से सबका मन मोह लेते हैं । कई पक्षी नदी-तालाब के किनारे रहते हैं तो कई पक्षी जंगल में रहते हैं तो कई पक्षी घोंसले में रहना पसंद करते हैं।

(2) चर्मज पक्षी– इन पंखियों के पंख चमड़े से बने होते हैं । चमगादड़, भारंड पक्षी, समुद्रवायस आदि का समावेश इनमें होता है।

शास्त्र में भारंड पक्षी का वर्णन आता है । यह पक्षी खूब बड़ा होता है । मनुष्य भी उसके पैर पकड़ ले तो वह आसानी से उड़ सकता है । वह पक्षी अत्यंत ही अप्रमत्त होता है । उसमें दो जीव, दो शरीर और एक मुँह होता है । भिन्न इच्छा होने पर उसका मरण होता है।

❁ मनुष्यलोक के बाहर के पक्षी - मनुष्य लोक अर्थात् ढाई-द्वीप के बाहर असंख्य द्वीप और समुद्र आए हुए हैं । वहाँ दो प्रकार के पक्षी पाए जाते हैं।

(1) समुद्ग पक्षी– ढाई-द्वीप के बाहर कई ऐसे पक्षी भी हैं, जिनके पंख, उड़ते समय हमेशा बंद ही होते हैं।

(2) वितत पक्षी– ढाई-द्वीप के बाहर कई ऐसे पक्षी भी हैं, जिनके पंख आकाश में उड़ते समय खुले ही होते हैं।

👉 तिर्यंच उत्पत्ति व मनुष्य 👉

सव्वे जल थल खयरा, संमूच्छिमा गब्भया दुहा हुंति ।
कम्माकम्मग भूमि अंतर दीवा मणुस्सा य ।।23 ।।

शब्दार्थ – –

सव्वे = सभी
जल-थल-खयरा = जलचर, स्थलचर और खेचर
संमूच्छिमा = संमूर्च्छिम
गब्भया = गर्भज
दुहा = दो प्रकार के
हुंति = होते हैं
कम्माकम्मग भूमि = कर्मभूमि और अकर्मभूमि
अंतरदीवा = अन्तर्द्वीप
मणुस्सा = मनुष्य
य = तथा

भावार्थ– सभी जलचर, स्थलचर और खेचर तिर्यंच, संमूर्च्छिम और गर्भज रूप दो प्रकार के होते हैं।

मनुष्य के मुख्य तीन प्रकार बताए हैं–
1. कर्मभूमिक–कर्मभूमि में उत्पन्न हुए,
2. अकर्मभूमिक– अकर्मभूमि में उत्पन्न हुए
3. और अन्तर्द्वीपक–अन्तर्द्वीप में हुए।

विवेचन– पंचेन्द्रिय तिर्यंच के जो मुख्य 5 भेद बतलाए हैं उन सबकी उत्पत्ति दो प्रकार से होती है । उसका वर्णन करते हुए प्रस्तुत गाथा में कहते हैं कि ये भी जलचर आदि प्राणी संमूर्च्छिम और गर्भज इन दो प्रकार से उत्पन्न होते है।

(1) संमूर्च्छिम जन्म– नर-मादा के संयोग बिना, उत्पत्ति के योग्य संयोग प्राप्त होने के साथ ही देह के सर्व अवयवों का जो निर्माण हो जाता है, उसे संमूर्च्छन क्रिया कहते हैं । एकेन्द्रिय से लेकर चउरिन्द्रिय तक के सभी तिर्यंचों की उत्पत्ति संमूर्च्छिम ही होती है।

एकेन्द्रिय व बेइन्द्रिय जीवों को उत्पन्न होने में स्वजाति के मल आदि की भी अपेक्षा नहीं होती है, जबकि तेइन्द्रिय व चउरिन्द्रिय जीव उत्पत्ति के योग्य संयोग मिलने पर स्वजाति के मल, लार, विष्टा आदि में उत्पन्न हो जाते हैं।

(2) गर्भज - गर्भ से उत्पन्न हुए जीव गर्भज कहलाते हैं । पुरुष के शुक्र अर्थात् वीर्य और स्त्री के रक्त का जहाँ मिश्रण होता है, उस क्रिया को गर्भ कहते हैं, उसका स्थान स्त्री के उदर में होता है।

जलचर आदि तिर्यंचों का जन्म संमूर्च्छिम और गर्भज इन दोनों प्रकारों से होता है।

ये गर्भज जीव भी तीन प्रकार के होते हैं–

(1) अंडज– अंडे के रूप में पैदा होने वाले अंडज कहलाते हैं । कुछ समय तक अंडे का सेवन होने के बाद बच्चा पैदा होता है । मुर्गी, चिड़िया आदि का जन्म अंडज कहलाता है।

(2) जरायुज– जरायु एक प्रकार का जाल जैसा पदार्थ होता है, जो रक्त आदि से भरा होता है । मनुष्य, गाय, भैंस, बकरी, घोड़ा आदि जीवों का जन्म जरायुज होता है।

(3) पोतज– किसी भी प्रकार के आवरण में लिपटे बिना पैदा होते हैं, वे पोतज कहलाते हैं, जैसे- हाथी, खरगोश, नेवला, चूहा आदि । इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच के कुल 20 भेद हुए।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय–

जलचर, स्थलचर, खेचर

(1) जलचर -> गर्भज, संमूर्च्छिम

- गर्भज -> पर्याप्त, अपर्याप्त
- संमूर्च्छिम -> पर्याप्त, अपर्याप्त

(2) स्थलचर -> चतुष्पद, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प

चतुष्पद -> गर्भज, संमूर्च्छिम

- गर्भज -> पर्याप्त, अपर्याप्त

उरपरिसर्प -> गर्भज, संमूर्च्छिम

- गर्भज -> पर्याप्त, अपर्याप्त

• संमूर्च्छिम -> पर्याप्त,अपर्याप्त

भुजपरिसर्प -> गर्भज, संमूर्च्छिम

• गर्भज -> पर्याप्त, अपर्याप्त

• संमूर्च्छिम -> पर्याप्त, अपर्याप्त

(3) खेचर -> गर्भज, संमूर्च्छिम

• गर्भज -> पर्याप्त, अपर्याप्त

• संमूर्च्छिम -> पर्याप्त, अपर्याप्त

🧘 मनुष्य के भेद 🧘

(1) कर्मभूमि– जहाँ असि, मसि और कृषि का व्यवहार तथा मोक्षमार्ग के अनुष्ठानरूप श्रुत और चारित्रधर्म की क्रियाएँ होती हैं, उसे कर्मभूमि कहते हैं।

असि अर्थात् तलवार, अस्त्र-शस्त्र आदि हथियार बनाना और उनका युद्ध और रक्षण हेतु उपयोग करना।

मसि अर्थात् स्याही बनाना-लेखन आदि की प्रवृत्ति करना।

कृषि अर्थात् खेती करना, पशु-पालन, धान्य का व्यवसाय करना आदि।

तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि उत्तमपुरुष इन करमभूमियों में ही पैदा होते हैं । जिनमंदिर, जिनप्रतिमा आदि के साधन कर्मभूमि में ही होते हैं।

ढाई द्वीप में ये कर्मभूमियाँ 15 हैं।

जंबूद्वीप में–

1 भरत, 1 ऐरावत, 1 महाविदेह

धातकी खंड में–

2 भरत, 2 ऐरावत, 2 महाविदेह

अर्ध षुष्करद्वीप में –

2 भरत, 2 ऐरावत, 2 महाविदेह

(5 भरत, 5 ऐरावत, 5 महाविदेह)

(15 कर्मभूमियाँ)

(2) अकर्मभूमि– जहाँ असि, मसि और कृषि का व्यवहार नहीं होता है, जहाँ तीर्थंकर आदि उत्तम पुरुष पैदा नहीं होते हैं । जहाँ मात्र युगलिक ही पैदा होते हैं, उसे अकर्मभूमि कहते हैं।

ढाई द्वीप में कुल 30 अकर्मभूमियाँ हैं।

जम्बूद्वीपमें 1 हेमवत, 1 हिरण्यवंत, 1 हरिवर्ष, 1 रम्यक्, 1 देवकुरु,1उत्तरकुरु

धातकी खंड में 2 हेमवत, 2 हिरण्यवंत, 2 हरिवर्ष, 2 रम्यक्, 2 देवकुरु,2 उत्तरकुरु

अर्ध पुष्करद्वीप में 2 हेमवत, 2 हिरण्यवंत, 2 हरिवर्ष, 2 रम्यक्, 2 देवकुरु,2 उत्तरकुरु

(5 हेमवत, 5 हिरण्यवंत, 5 हरिवर्ष, 5 रम्यक्, 5 देवकुरु,5 उत्तरकुरु = 30 अकर्मभूमियाँ)

देवों के भेद

दसहा भवणाहिवइ, अट्ठविहा वाणमंतरा हुंति ।
जोइसिया पंचविहा, दुविहा वेमाणिया देवा ।।24 ।।

शब्दार्थ – –

दसहा = दश प्रकार के
भवणाहिवइ = भवनाधिपति (भवनपति)
अट्ठविहा = आठ प्रकार के
वाणमंतरा = वाण वयंतर
हुंति = होते हैं
जोइसिया = ज्योतिष्क
पंचविहा = पाँच प्रकार के
दुविहा = दो प्रकार के
वेमाणिया = वैमानिक
देवा = देव

भावार्थ –देवों के मुख्य चार भेद हैं- 1- भवनपति, 2- व्यंतर, 3- ज्योतिष्क और 4- वैमानिक । उनके क्रमशः दश, आठ, पाँच और दो प्रकार है।

सिद्ध जीव

सिद्धा पनरस भेया तित्थातित्थाइ सिद्ध भेएणं ।
एए संखेवेणं, जीव विगप्पा समक्खाया ।।25 ।।

शब्दार्थ – –

सिद्धा = सिद्ध जीव
पनरस भेया = पंद्रह भेदवाले
तित्थातित्थाइ = तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध आदि
सिद्धभेएण = सिद्ध के भेद से
एए = इस प्रकार
संखेवेणं = संक्षेप से
जीव विगप्पा = जीव के विकल्प
समक्खया = कहे गए हैं ।

भावार्थ– तीर्थ सिद्ध, अतीर्थ सिद्ध आदि सिद्ध जीवों के पंद्रह प्रकार हैं । इस प्रकार सभी जीवों के भेद संक्षेप में कहे गये हैं।

1 से लेकर 25 गाथाओं में जीवों के स्वरूप का विचार पूर्ण हुआ।

इन संसारी जीवों के शरीर की ऊँचाई कितनी है ? उनका आयुष्य कितना है ? उनमें प्राण कितने हैं ? उनकी योनियाँ कितनी हैं ? और उनकी स्वकाय स्थिति कितनी है ? इत्यादि पाँच द्वारों के माध्यम से उन जीवों का विचार किया जाना शेष रहा है। आगे उचीत समय पर आपके मोबाइल पर भेज सकूंगा ताकि आप प्रिंट निकलवा कर वर्तमान में भेजी गई दोनों पीडीएफ के साथ लगा सकेंगे।

सर्वज्ञ भगवंतों ने अपने केवलज्ञान से प्रत्यक्ष देखकर चौदह राजलोक में रह रहे जीवों के यथार्थ स्वरूप का जो वर्णन किया है, उसे जानने, समझने के बाद लगता है कि वर्तमान विज्ञान ने जीव-विज्ञान के बारे में जो कुछ बतलाया है वह कितना वामन है।

एक महासागर के आगे एक जलबिंदु कितना तुच्छ है, उसी प्रकार सर्वज्ञ भगवंतों के अनंत ज्ञान के आगे वर्तमान वैज्ञानिकों की सिद्धियाँ या शोध भी महासागर के आगे बिन्दु तुल्य ही है।

पहले आरे में मनुष्य की ऊँचाई 3 गाउ प्रमाण थी । उनका आयुष्य तीन पल्योपम जितना था, आज भी स्वयंभूरमण समुद्र में 1,000 योजन के मत्स्य पाए जाते हैं, देवताओं व नारकों का उत्कृष्ट आयुष्य 33 सागरोपम जितना है, इत्यादि अनेक बातें हैं, जिनके बारे में आज के वैज्ञानिक कल्पना भी नहीं कर पाते हैं। ये सब बातें सामान्य ज्ञानवाले मानव के सोच के बाहर ही हैं।

परंतु ये सब सत्य बातें सर्वज्ञ भगवंतों ने बतलाई हैं, अतः उनमें शंका को कोई स्थान ही नहीं हो सकता।

हाँ ! श्रद्धा से गम्य कई पदार्थों को तर्क या दृष्टांत से समझाया नहीं जा सकता । उन्हें जानने के लिए या तो स्वयं को सर्वज्ञ बनना होगा या सर्वज्ञ भगवंतों के ज्ञान पर श्रद्धा रखनी होगी, तभी हम उनके अनंतज्ञान के अंश का भी लाभ उठा सकेंगे।

⋆रत्नमय इन विमानों में सदैव प्रकाश ही रहता है, कहीं भी अंधेरा नहीं होता है । वहाँ अहोरात्रि की व्यवस्था नहीं है। विमान के चारों ओर अनेक वनखंड बड़े-बड़े सरोवर आदि होते हैं । जहाँ वैमानिक देव-देवियाँ भव धारणीय शरीर से क्रीड़ा करते रहते हैं ।
मूल विमान से ईशान कोण में तीन दिशाओं में तीन द्वार से युक्त सुधर्मासभा है ।
सुधर्मासभा के ईशान कोण में जिनेश्वर परमात्मा का जिनालय है।

उस सुधर्मासभा के मध्य में मणिपीठिका है, उसके ऊपर 60 योजन ऊँचा, एक योजन चौड़ा व एक योजन गहरा माणवक नामक चैत्यस्तंभ है । उस स्तंभ के मध्य में सोने-चाँदी के फलक हैं । उन फलकों में वज्र रत्न की खूँटियाँ हैं । उसके ऊपर छींके में रहे वज्र के दाभड़े हैं । उन दाभड़ों में अरिहंत परमात्मा की अस्थियाँ होती हैं, जो देवों के लिए होती हैं ।

इन अस्थियों का प्रक्षालन जल छांटने से देवताओं के क्लेश व आवेश आदि दोष तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

सिद्धायतन के मध्य भाग में मणिपीठिका है, उसके सुन्दर देवछंद हैं, वहाँ श्री अरिहंतों की शाश्वती 108 प्रतिमाएँ होती हैं, जिन्हें वैमानिक देव-देवी भक्ति से पूजते हैं ।

देवताओं का जन्म उपपात शय्या में होता है । उनका शरीर अत्यंत सुगंधित होता है । उनके मुख का पवन भी सुगंधित होता है उन्हें पसीना नहीं होता है । सौभाग्य आदि गुण-समूह से उनका शरीर अत्यंत सुन्दर होता है ।

वैमानिक देव मनुष्यलोक में आने की इच्छा नहीं करते हैं क्योंकि -

(1) दिव्य काम-भोग में आसक्त होने से मनुष्य संबंधी काम-भोग को चाहते नहीं है ।

(2) दिव्य काम-भोग की आसक्ति के कारण मनुष्य संबंधी प्रेम नष्ट हो जाता है ।

(3) नवीन उत्पन्न देव सोचता है, 'अभी थोड़ी देर बाद जाता हूँ....' इन विचारों में वर्षों बीत जाते हैं और इधर मानव की मृत्यु हो जाती है ।

मनुष्य लोक की दुर्गन्ध 400-500 योजन ऊपर जाने से भी देवता लेते नहीं है ।

मनुष्य लोक में देवों का आगमन

(1) अरिहंत परमात्मा के पुण्य प्रभाव से पाँचों कल्याणक समय इन्द्र व देवता मनुष्यलोक में आते हैं।

(2) इन्द्र द्वारा किसी साधु या श्रावक के सद्गुणों की प्रशंसा करने पर, अश्रद्धा के कारण मिथ्यात्वी देव उन साधु-श्रावक की परीक्षा के लिए आते हैं ।

(3) शालिभद्र जैसे विशिष्ट पुण्यशाली के आदि स्नेह के अतिरेक से गोभद्र आदि देव की तरह आते हैं और भोग-सामग्री प्रदान करते हैं ।

(4) पूर्व भव के स्नेह के कारण वैमानिक देव नरक में भी जाते हैं । जैसे 5वें ब्रह्मलोक में उत्पन्न बलभद्र अपने भाई कृष्ण वासुदेव को दुःख मुक्त करने के लिए तीसरी नरक में गया है ।

सीता के जीव अच्युतेन्द्र ने चौथी नरक में जाकर परस्पर लड़ रहे रावण व लक्ष्मण को धर्मबोध दिया।

देवताओं का अवधिज्ञान क्षेत्र

---

(1) देव नाम - सौधर्म ईशान
नीचे - रत्नप्रभा तक
तीरछा - असंख्य द्वीप समुद्र
ऊपर - अपने विमान की ध्वजा तक

(2) देव नाम - सनतकुमार माहेन्द्र
नीचे - शर्कराप्रभा
तीरछा - उससे विशेष असंख्य
ऊपर - अपने विमान की ध्वजा तक

(3) देव नाम - ब्रह्मलोक लांतक
नीचे - वालुकाप्रभा
तीरछा - उससे विशेष असंख्य द्वीप समुद्र
ऊपर -अपने विमान की ध्वजा तक

(4) देव नाम -महाशुक्र सहस्त्रार
नीचे - पंकप्रभा
तीरछा - उससे विशेष असंख्य द्वीप समुद्र
ऊपर - अपने विमान की ध्वजा तक

(5) देव नाम - आनत प्राणत
नीचे - तमःप्रभा
तीरछा - उससे असंख्य द्वीप समुद्र
ऊपर - अपने विमान की ध्वजा तक

(6) देव नाम -आरण-अच्युत
नीचे - तमःप्रभा
तीरछा - उससे असंख्य द्वीप समुद्र
ऊपर - अपने विमान की ध्वजा तक

(7) देव नाम - नीचे व मध्य के 3-3 ग्रैवेयक
नीचे - तमःप्रभा
तीरछा - उससे असंख्य द्वीप समुद्र

ऊपर - अपने विमान की ध्वजा तक

(8) देव नाम - ऊपर के 3 ग्रैवेयक
नीचे - महातमःप्रभा
तीरछा - उससे असंख्य द्वीप समुद्र
ऊपर - अपने विमान की ध्वजा तक

(9) देव नाम - 5 अनुत्तर
नीचे - लोकनाली अंततक
तीरछा - उससे स्वयंभूरमण समुद्र
ऊपर - थोड़ा न्यून लोक नालिका तक

विमानों की संख्या

(1) सौधर्म देवलोक- 32,00,000
(2) ईशान देवलोक- 28,00,000
(3) सनतकुमार- 12,00,000
(4) माहेन्द्र- 8,00,000
(5) ब्रह्मलोक- 4,00,000
(6) लांतक- 50,000
(7) महाशुक्र- 40,000
(8) सहस्त्रार- 6,000
(9)-(10) आनत-प्राणत- 400
(11)-(12) आरण अच्युत- 300
पहले तीन ग्रैवेयक- 111
दूसरे तीन ग्रैवेयक- 107
तीसरे तीन ग्रैवेयक- 100
5 अनुत्तर ग्रैवेयक- 5

⭐ नौ ग्रैवेयक के नाम

---

1. सुदर्शन, 2. सुप्रतिबद्ध, 3. मनोरम,
4. सर्वतोभद्र, 5. सुविशाल, 6. सौमनस,
7. सुमनस, 8. प्रियंकर, 9. आदित्य

⭐ वैमानिक देवों का आयुष्य

देवलोक - 1- सौधर्म
~~~~~~~~~~~~~
~~~~~~~~~~~~~

जघन्य आयुष्य - 1 पल्योपम
उत्कृष्ट आयुष्य - 2 सागरोपम

देवलोक - 2- ईशान
~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य - साधिक पल्योपम
उत्कृष्ट आयुष्य - दो सागरोपम से कुछ अधिक

देवलोक - 3- सनतकुमार
~~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य - 2 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य - 7 सागरोपम

देवलोक - 4- माहेन्द्र
~~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य - साधिक 2 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य - 7 सागरोपम से कुछ अधिक

देवलोक - 5- ब्रह्मलोक
~~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य - साधिक 7 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य - 10 सागरोपम

देवलोक - 6- लांतक
~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य - 10 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य - 14- सागरोपम

देवलोक - 7- महाशुक्र
~~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य - 14 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य - 17 सागरोपम

देवलोक - 8- सहस्त्रार
~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य - 17 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य - 18 सागरोपम

देवलोक - 9- आनत
~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य - 18 सागरोपम

उत्कृष्ट आयुष्य - 19 सागरोपम

देवलोक - 10- प्राणत
~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य - 19 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य - 20 सागरोपम

देवलोक - 11- आरण
~~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य - 20 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य - 21 सागरोपम

देवलोक - 12- अच्युत
~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य - 21 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य - 22 सागरोपम

⭐ **नौ ग्रैवेयक में आयुष्य**
---💐☘ 💐☘ 💐☘ ---
देवलोक पहला ग्रैवेयक
~~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य– 22 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य– 23 सागरोपम

देवलोक दूसरा ग्रैवेयक
~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य– 23 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य–24 सागरोपम

देवलोक तीसरा ग्रैवेयक
~~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य –24 सागरोपम
:उत्कृष्ट आयुष्य– 25 सागरोपम

देवलोक चौथा ग्रैवेयक
~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य – 25 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य – 26 सागरोपम

देवलोक पाँचवाँ ग्रैवेयक
~~~~~~~~~~~~~~~~

जघन्य आयुष्य– 26 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य – 27 सागरोपम

देवलोक छठा ग्रैवेयक
~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य– 27 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य– 28 सागरोपम

देवलोक सातवाँ ग्रैवेयक
~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य– 28 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य– 29 सागरोपम

देवलोक आठवाँ ग्रैवेयक
~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य– 29 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य–30 सागरोपम

देवलोक नौवाँ ग्रैवेयक
~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य– 30 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य– 31 सागरोपम

देवलोक विजय आदि चार अनुत्तर में
~~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य– 31 सागरोपम
उत्कृष्ट आयुष्य– 32 सागरोपम

देवलोक सर्वार्थसिद्ध में
~~~~~~~~~~~~~~
जघन्य आयुष्य–----------
उत्कृष्ट आयुष्य – 33 सागरोपम

⭑ **विशेषताएँ**
---🌹☘ 🌹☘ ---
🌹अभव्य आत्मा साधुपने का स्वीकार करे तो अधिकतम नौवें ग्रैवेयक तक जा सकती है ।

🌹सम्यग्दृष्टि साधु महात्मा ही पाँच अनुत्तर में जा सकते हैं । सर्वार्थसिद्ध विमानवासी एकाभवतारी होते हैं तथा शेष चार अनुत्तरवासी के अधिकतम 24 भव होते हैं, वे भी सिर्फ देव और मनुष्य के ही भव होते हैं ।

🌹9 ग्रैवेयक व 5 अनुत्तर विमानवासी कल्पातीत होते हैं अर्थात् वहाँ स्वामी सेवक भाव नहीं होते हैं ।

अनुत्तर विमानवासी देव अपना दीर्घकाल तत्त्वचिंतन में ही व्यतीत करते हैं । तत्त्वचिंतन में कहीं शंका पड़े तो महाविदेह आदि क्षेत्रों में रहे तीर्थंकर परमात्मा, वहीं रहते हुए उनकी शंकाओं का समाधान कर देते हैं ।

🌹 लोकांतिक देव

---🌹☘ 🌹☘ 🌹☘ ---

ये 9 लोकांतिक देव ब्रह्मदेवलोक में लोक के अंत भाग की ओर एक ओर रहते हैं ।

🌹ये देव अधिकतम 7-8 भवों में मोक्षगामी होते हैं । ब्रह्मलोक की चार दिशा, चार विदिशा और एक मध्य में, स्थित ये विमान हैं ।

🌹 तीर्थंकर परमात्मा का दीक्षा काल नजदीक आने पर एक वर्ष पूर्व, प्रभु के: पास आकर 'जय जय नंदा जय जय भद्दा' कहकर प्रभु की स्तुति करते हैं और भगवान को...

'भयवं तित्थं पवत्तेहिं'

🌹 हे भगवन् ! जगत् के जीवों के कल्याण के लिए तीर्थ प्रवर्ताओ' कहकर निवेदन करते हैं ।

🌹ये देवता लघुकर्मी होते हैं और कुछ ग्रंथों अनुसार 'एकाभवतारी' होते हैं ।

लोकांतिक देवों के नाम

---🌹☘ 🌹☘ 🌹☘ ---

1. सारस्वत, 2. आदित्य, 3. वह्नि,
4. अरुण, 5. गर्दतोय, 6. तुषित,
7. अव्याबाध, 8. मरुत, 9. अरिष्ट

5 अनुत्तर देवों के नाम

---🌹☘ 🌹☘ 🌹☘ ---

1- विजय, 2- वैजयंत, 3- जयंत,
4- अपराजित, 5- सर्वार्थसिद्ध

देवों के कुल 198 भेद

---🌹☘ 🌹☘ 🌹☘ ---

25 भेद भवनपति–
10 भवनपति और 15 परमाधार्मिक

26 भेद व्यंतर–
8 व्यंतर, 8 वाण व्यंतर, 10 तिर्यक्जृंभक

10 भेद ज्योतिष्क–
5 चर 5 अचर

38 भेद वैमानिक–
12 सौधर्म आदि, 3 किल्बिषिक,
9 लोकांतिक, 9 ग्रैवेयक, 5 अनुत्तर
(24 कल्पोपपन्न, 14 कल्पातीत)

99 पर्याप्त तथा 99 अपर्याप्त का भेद करने पर देवों 99 + 99 = 198 भेद होते हैं।

देवों की ऊँचाई

ईशाणंत सुराणं रयणीओ सत्त हुंति उच्चत्तं ।
दुग दुग दुग चउ गेविज्जणुत्तरेक्किक्क परिहाणी ।।33।।

ईसाणंत = ईशान देवलोक तक
सुराणं = देवताओं को
रयणीओ = हाथ
सत्त = सात
हुंति = होती है
उच्चत्तं = ऊँचाई
दुग दुग दुग = दो दो और दो
चउ = चार
गेविज्ज = गैवेयक
अणुत्तरे = अनुत्तर
इक्किक्क = एक-एक
परिहाणि = हानि

भावार्थ - ईशान (दूसरा वैमानिक देवलोक) के देवताओं की उत्कृष्ट ऊँचाई सात हाथ प्रमाण है । उसके बाद ऊपर-ऊपर के देवलोकों में दो-दो-दो, चार, गैवेयक और अनुत्तर विमान में एक-एक हाथ कम
ऊँचाई है।

देव - भवनपति, व्यंतर, वाण व्यंतर, ज्योतिष, तिर्यक्जृंभक, परमाधार्मिक, पहले व दूसरे देवलोक एवं किल्बिषिक देव ऊँचाई - 7 हाथ ।

देव - तीसरा-चौथा देवलोक एवं दूसरा किल्बिषिक । ¤ ऊँचाई - 6 हाथ ।

देव - पाँचवाँ-छठा देवलोक और तीसरा किल्बिषिक नवलोकांतिक । ¤ ऊँचाई - 5 हाथ ।

देव - सातवाँ-आठवाँ देवलोक । ऊँचाई - 4 हाथ ।

देव - नौवाँ-दसवाँ-ग्यारहवाँ-बारहवाँ देवलोक । ऊँचाई - 3 हाथ ।

देव - नौ ग्रैवेयक देवों की ऊँचाई । ¤ ऊँचाई - 2 हाथ ।

देव - पाँच अनुत्तर । ¤ ऊँचाई - 1 हाथ ।

क्रमशः अधिक-अधिक ऊँचाई वाले जीव

(1) अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी ऊँचाई -

1-2 सूक्ष्म-बादर पृथ्वीकाय
3-4 सूक्ष्म-बादर अप्काय
5-6 सूक्ष्म-बादर तेउकाय
7-8 सूक्ष्म-बादर वायुकाय
9 सूक्ष्म-बादर साधारण वनस्पतिकाय
10- संमूर्च्छिम मनुष्य

(2) एक हाथ की ऊँचाई वाले -

5 अनुत्तर

(3) दो हाथ की ऊँचाई वाले -

9 ग्रैवेयक

(4) तीन हाथ की ऊँचाई वाले -

नौवें-दसवें-ग्यारहवें-बारहवें वैमानिक देवलोक के देवता

(5) चार हाथ की ऊँचाई वाले -

सातवें-आठवें देवलोक में देवता

(6) पाँच हाथ की ऊँचाई वाले -

पाँचवें-छठें देवलोक के देवता

तीसरे किल्बिषिक देव
नौ लोकांतिक देव

(7) छह हाथ की ऊँचाई वाले

तीसरे व चौथे वैमानिक देवलोक के देवता

(8) सात हाथ की ऊँचाई वाले -

10 भवनपति निकाय के देवता
8 व्यंतर निकाय के देवता
10 तिर्यक्जृंभक जाति के देवता
5 चर ज्योतिष निकाय के देवता
1 सौधर्म देवलोक के देवता
1 ईशान देवलोक के देवता
1 पहले किल्बिषिक जाति के देवता

(9) नारकों की ऊँचाई -

पहली नरक में 7 3/4 धनुष 6 अंगुल

दूसरी नरक में 15 1/2 धनुष 6 अंगुल

तीसरी नरक में 31 1/4 धनुष

चौथी नरक में 62 1/2 धनुष

पाँचवी नरक में 125 धनुष

छठीं नरक में 250 धनुष

सातवीं नरक में 500 धनुष

(10) धनुष-पृथक्त्व ऊँचाई वाले -

गर्भज और संमूर्च्छिम खेचर
संमूर्च्छिम भुज परिसर्प

11- तीन गाउ की ऊँचाई वाले -

तेइन्द्रिय, गर्भज मनुष्य

12- छह गाउ की ऊँचाई वाले

गर्भज चतुष्पद

13- गाउ पृथक्त्व ऊँचाई वाले -

गर्भज भुज परिसर्प
संमूर्च्छिम चतुष्पद

14- 1 योजन ऊँचाई वाले -

चउरिन्द्रिय जीव

15- 12 योजन ऊँचाई वाले -

बेइन्द्रिय जीव

16- योजन पृथक्त्व ऊँचाई वाले -

संमूर्च्छिम उर परिसर्प

17- 100 योजन ऊँचाई वाले

गर्भज उर परिसर्प
गर्भज खेचर
गर्भज संमूर्च्छिम जलचर

18- 1000 योजन से अधिक ऊँचाई वाले -

बादर प्रत्येक वनस्पतिकाय

आयुष्य द्वार

बावीसा पुढवीए सत्त य आउस्स तिन्नि वाउस्स ।
वास सहस्सा दस तरु गणाण तेउ तिरत्ताउ ।।

बावीसा = बाईस
पुढवीए = पृथ्वीकाय की
सत्त = सात
य = और
आउस्स = अप्काय की
तिन्नि = तीन
वाउस्स = वायुकाय की
वास = वर्ष
सहस्सा= हजार
दस = दश
तरुगणाण = वनस्पतिकाय
तेउ = तेउकाय की
तिरत्त = तीन रात्रि दिन
आऊ = आयुष्य

पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय की क्रमशः बाईस, सात, तीन और दस हजार वर्ष तथा तेउकाय का तीन अहोरात्र उत्कृष्ट आयुष्य है ।

जिस प्रकार पृथ्वीकाय आदि में जीव होता है, उसी प्रकार उन जीवों का निश्चित आयुष्य भी होता है । जब तक आयुष्य होता है, तब तक कोई जीव एक गति में अमुक काल तक जीवित रह सकता है । आयुष्य पूर्ण होते ही उसकी मृत्यु हो जाती है ।

मृत्यु के बाद उनका कलेवर शेष रहता है । खान में रहा पत्थर, नीचे की पृथ्वी आदि सचित्त होती है, परंतु वर्षा, धूप, वायु के प्रहार आदि से वह भूमि अचित्त बन जाती है ।

पृथ्वीकाय आदि जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है, उसका निर्देश उपर्युक्त गाथा में किया गया है ।

इस गाथा में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय के उत्कृष्ट आयुष्य का निर्देश किया है ।

पृथ्वीकाय का आयुष्य - 22,000 वर्ष
अप्काय का उत्कृष्ट आयुष्य - 7,000 वर्ष
तेउकाय का उत्कृष्ट आयुष्य - तीन अहोरात्र
वायुकाय का उत्कृष्ट आयुष्य - 3,000 वर्ष
प्रत्येक वनस्पतिकाय का उत्कृष्ट आयुष्य - 10,000 वर्ष है।

विकलेन्द्रियों का आयुष्य

वासाणि बारसाउ, बेइंदियाणं तेइंदियाणं तु ।
अउणापण दिणात्रइं, चउरिंदीणं तु छम्मासा ।।35।।

वासाणि = वर्ष
बारस = बारह
आउ = आयुष्य
बेइंदियाणं = द्वीन्द्रियों का
तेइंदियाणं = त्रीन्द्रियों का
तु = तथा
अउणापन्न = ऊनपचास
दिणाइं = दिन
चउरिंदीणं = चतुरिन्द्रियों का
तु = तथा
छम्मासा = छः मास

भावार्थ – बेइन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य 12 वर्ष, तेइन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य ऊनपचास दिन तथा चउरिन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य छः मास है ।

देवता आदि का उत्कृष्ट आयुष्य

सुरनेरइयाण ठिई, उक्कोसा सागराणि तित्तीसं ।
चउप्पय-तिरिय मणुस्सा, तिन्नि य पलिओवमा हुंति ।।36।।

सुर = देवता
नेरइयाण = नारकों की
ठिई = स्थिति
उक्कोसा = उत्कृष्ट
सागराणि = सागरोपम
तित्तीसं = तैंतीस
चउप्पय = चतुष्पद
तिरिय = तिर्यंच
मणुस्सा = मनुष्य
तिन्नि = तीन
य = तथा
पलिओवमा = पल्योपम
हुंति = है ।

भावार्थ – देवता और नरक के जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य तैंतीस सागरोपम है और चतुष्पद तिर्यंच और मनुष्यों का उत्कृष्ट आयुष्य तीन पल्योपम है ।

विवेचन –समस्त प्राणी-सृष्टि में सबसे अधिक उत्कृष्ट आयुष्य देवता और नरक के जीवों का होता है । नरक में भी यह उत्कृष्ट आयुष्य सातवीं नरक के जीवों का होता है और देवलोक में रहे देवताओं का उत्कृष्ट आयुष्य पाँच अनुत्तर में रहे सर्वार्थसिद्ध विमान के देवताओं का होता है ।

मनुष्य और चतुष्पद तिर्यंच पंचेन्द्रियों का उत्कृष्ट आयुष्य तीन पल्योपम कहा गया है । चतुष्पद तिर्यंच, मनुष्य का यह उत्कृष्ट आयुष्य भी देवकुरु और उत्तरकुरु में रहे युगलिकों का तथा भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के पहले आरे एवं उत्सर्पिणी काल के छठें आरे में रहे मनुष्य व चतुष्पद तिर्यंचों का होता है ।

पल्योपम, सागरोपम की समझण

पल्य की उपमा द्वारा जिस संख्या को समझाया जाता है उसे पल्योपम कहते हैं ।

इस पल्योपम में असंख्य वर्ष होते हैं । यद्यपि इस पल्योपम के कुल छः भेद होते हैं । उद्धार, अद्धा और क्षेत्र पल्योपम के सूक्ष्म और बादर भेद करने पर पल्योपम के कुल छः भेद होते हैं, परंतु आयुष्य के माप में बादर अद्धा पल्योपम का उपयोग होने से उसका स्वरूप बतलाते हैं ।

बादर अद्धा पल्योपम

एक योजन, लंबे-चौड़े और गहरे खड्डे में सात दिन के युगलिक के एक-एक बाल को सात बार आठ-आठ टुकड़े अर्थात् 20,97,152 टुकड़े कर, उन टुकड़ों से उस खड्डे को ठूंस-ठूंस कर इस प्रकार भरा जाय कि चक्रवर्ती का सैन्य चले तो भी वे दबे नहीं, तत्पश्चात् 100-100 वर्ष के बाद उन टुकड़ों को बाहर निकाला जाय, जितने वर्षों में वह कुआं खाली हो, उस काल को पल्योपम कहते हैं ।

एक करोड़ को एक करोड़ से गुणने पर जो संख्या आती है उसे कोटाकोटी कहते हैं ।
ऐसे 10 कोटाकोटी पल्योपम को एक सागरोपम कहा जाता है ।

गर्भज तिर्यंचों का उत्कृष्ट आयुष्य

जलयर उर भुयगाणं परमाऊ होई पुव्वकोडी उ ।
पक्खीणं पुण भणिओ, असंखभागो य पलियस्स ।।37।।

जलयर = जलचर
उर = उर परिसर्प
भुयगाणं = भुज परिसर्प

परमाउ = उत्कृष्ट आयुष्य
होई = होता है ।
पुव्वकोडी = पूर्व करोड़
उ = तथा
पक्खीणं = पक्षियों का
पुण = तथा
भणिओ = कहा गया है ।
असंखभागो = असंख्यातवाँ भाग
पलियस्स = पल्योपम का

भावार्थ – जलचर, उर परिसर्प तथा भुज परिसर्प जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य एक करोड़ पूर्व वर्ष का होता है तथा पक्षियों का उत्कृष्ट आयुष्य पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग जितना कहा गया है ।

विवेचन - जलचर संमूर्च्छिम और गर्भज दोनों का उत्कृष्ट आयुष्य एक करोड़ पूर्ववर्ष प्रमाण है ।

गर्भज चतुष्पद का उत्कृष्ट आयुष्य एक करोड़ पूर्व वर्ष और संमूर्च्छिम चतुष्पद का उत्कृष्ट आयुष्य 84000 वर्ष है ।

गर्भज उर परिसर्प का उत्कृष्ट आयुष्य एक करोड़ पूर्व वर्ष और संमूर्च्छिम उर परिसर्प का उत्कृष्ट आयुष्य 53000 वर्ष है ।

गर्भज भुज परिसर्प का उत्कृष्ट आयुष्य एक करोड़ पूर्व वर्ष और संमूर्च्छिम भुज परिसर्प का उत्कृष्ट आयुष्य 42000 वर्ष है ।

1पूर्व = 70 लाख 56 हजार करोड़ वर्ष ।

सव्वे सुहुमा साहारणा य, संमुच्छिमा मणुस्सा य ।
उक्कोस जहन्नेण अंत-मुहुत्तं चिय जियंति ।।38।।

सव्वे = सभी
सुहुमा = सूक्ष्म
साहरणा = साधारण वनस्पतिकाय
य = तथा
संमुच्छिमा = संमूर्च्छिम
मणुस्सा = मनुष्य
य = तथा
उक्कोस = उत्कृष्ट
जहन्नेण = जघन्य से
अंतमुहुत्तं = अंतर्मुहूर्त्त
चिय = ही
जियंति = जीते हैं ।

भावार्थ – सभी सूक्ष्म जीव, साधारण वनस्पतिकाय के जीव और संमूर्च्छिम मनुष्यों का जघन्य और उत्कृष्ट आयुष्य एक अंतर्मुहूर्त्त मात्र ही होता है ।

विवेचन – चौदह राजलोक में बाल के अग्र भाग जितना भी स्थान ऐसा नहीं है, जहाँ सूक्ष्म जीव नहीं हों । सूक्ष्म पृथ्वीकाय, सूक्ष्म अप्काय, सूक्ष्म तेउकाय, सूक्ष्म वायुकाय और सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय के जीव चौदह राजलोक में सर्वत्र रहे हुए हैं । इन जीवों का जघन्य और उत्कृष्ट आयुष्य अंतर्मुहूर्त्त प्रमाण ही होता है।

इसी प्रकार मनुष्य के मल, वीर्य, श्लेष्म, पित्त, पसीना आदि चौदह अशुचि स्थानों में संमूर्च्छिम मनुष्य पैदा होते हैं, इनके शरीर की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है । ये जीव भी आँखों से दिखाई नहीं देते हैं । ये जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं करते हैं अर्थात् अपर्याप्त अवस्था में ही इन जीवों की मृत्यु हो जाती है । इन जीवों का भी जघन्य और उत्कृष्ट आयुष्य अंतर्मुहूर्त्त प्रमाण ही होता है ।

दो द्वारों का उपसंहार

ओगाहणाउ-माणं, एवं संखेवओ समक्खायं ।
जे पुण इत्थ विसेसा, विसेस सुत्ताउ ते नेया ।।39।।

ओगाहणा = अवगाहना
आउ = आयुष्
माणं = प्रमाण
एवं = इस प्रकार
संखेवओ = संक्षेप से
समक्खायं = कहा गया
जे = जो
पुण = पुन:
इत्थ = यहाँ
विसेसा = विशेष
विसेस सुत्ताउ = विशेष सूत्रों से
ते = वह
नेया = जानना चाहिए

भावार्थ – इस प्रकार अवगाहना और आयुष्य का प्रमाण संक्षेप में बतलाया है । इसमें जो विशेष है, वह विशेष सूत्रों से जानना चाहिए ।

विवेचन – ग्रंथकार महर्षि ने इस ग्रंथ की रचना संक्षिप्त रूचिवाले जीवों के लिए की है ।

तत्वज्ञान के महासागर में डुबकी लगाने के पूर्व यह नदी तुल्य तत्त्वज्ञान का प्रवेशद्वार है । प्रारंभ में संक्षेप में तत्त्वज्ञान की सामान्य जानकारी मिल जाय तो फिर तत्त्वज्ञान के सूक्ष्म पदार्थों की जिज्ञासा बढ़ सकती है ।

छोटे बच्चे को प्रारंभ में 1-2 रोटी ही खिलाई जाती है, फिर ज्यों-ज्यों उसकी उम्र बढ़ती जाती है त्यों-त्यों उसे अधिक-अधिक खुराक दिया जाता है ।

बस, इसी प्रकार इस जीव विचार नाम के छोटे से प्रकरण ग्रंथ में बहुत ही संक्षेप में ग्रंथकार महर्षि ने अवगाहना और आयुष्य के द्वारों का संक्षेप वर्णन किया है, अब जिसे इस विषय में अधिक जिज्ञासा हो, उसे इस विषय का निर्देश करनेवाले प्रज्ञापना आदि ग्रंथों का अभ्यास करना चाहिए ।

स्वकाय स्थिति द्वार –
एकेन्द्रियों की स्वकाय स्थिति

एगिंदिया य सव्वे, असंख उस्सप्पिणी सप्पिणी सकायम्मि ।
उववज्जंति चयंति य, अणंतकाया अणंताओ ।।40।।

एगिंदिया = एकेन्द्रिय
य= और
सव्वे = सभी
असंख = असंख्य
उस्सप्पिणी-सप्पिणी = उत्सर्पिणी अवसर्पिणी
सकायम्मि = स्वकाय में
उववज्जंति = उत्पन्न होते हैं
चयंति = नष्ट होते हैं
य = और
अणंतकाया -अनंतकाय जीव
अणंताओ = अनंत (उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी)

भावार्थ – सभी एकेन्द्रिय अपनी काय में असंख्य उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल तक और अनंतकाय (साधारण वनस्पतिकाय) अनंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल तक स्वकाय में उत्पन्न होते हैं और मरते हैं। स्वकाय अर्थात् अपनी ही काय में, जैसे कोई जीव कहीं से मरकर पृथ्वीकाय मेंतं उत्पन्न हुआ तो अब जीव पुनः मरकर पुनः पृथ्वीकाय में ही जन्म ले और मरे तो उस जीव का पृथ्वीकाय में ही जन्म-मरण कितने काल तक हो सकता है । अर्थात् पृथ्वीकाय का जीव मरकर कब तक पृथ्वीकाय में ही जन्म-मरण कर सकता है । इसका जवाब देते हुए कहते हैं कि साधारण वनस्पतिकाय को छोड़कर सभी पृथ्वीकाय, वायुकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय जीवों की स्वकाय स्थिति असंख्य उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल है अर्थात् वह जीव इतने लंबे समय तक उसी काय में रह सकता है ।

जबकि साधारण वनस्पतिकाय की कायस्थिति अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल है । अर्थात् साधारण वनपति में रहाड़ जीव अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक साधारण वनस्पतिकाय में ही रह सकता है ।

उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी - दस कोटाकोटी सागरोपम काल को एक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी काल कहते हैं ।

कोटाकोटी अर्थात् एक करोड़ को एक करोड़ से गुणा करने करने पर जो संख्या आती है, उसे कोटाकोटी कहते हैं । पुनः उस संख्या को 10 से गुणा करने पर जो संख्या आती है, 10 कोटाकोटी कहा जाता है ।

❀ विकलेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय की स्वकाय स्थिति ❀

संखिज्ज समा विगला, सत्तट्ठ भवा पणिंदि तिरि मणुआ ।
उववज्जंति सकाए, नारय देवा य नो चेव ।।41।

संखिज्ज समा = संख्याता वर्ष
विगला = विकलेन्द्रिय जीव
सत्तट्ठ भवा = सात आठ भव
पणिंदि = पंचेन्द्रिय
तिरि मणुआ = तिर्यंच और मनुष्य
उववज्जंति = उत्पन्न होते हैं
सकाए = स्वकाय में
नारय = नारक
देवा = देव
य = और
नो = नहीं
चेव = ही

भावार्थ – विकलेन्द्रिय जीव संख्याता वर्षों तक स्वकाय में उत्पन्न हो सकते हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों की स्वकाय स्थिति सात-आठ भव है । देव व नारक मरकर पुनः देव व नारक नहीं बनते हैं ।
विवेचन – बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों की स्वकाय स्थिति संख्याता वर्ष है। अर्थात् संख्याता वर्षों तक वे जीव मरकर पुनः उसी बेइन्द्रिय आदि में उत्पन्न हो सकते हैं ।पंचेन्द्रिय तिर्यंच की स्वकाय स्थिति सात-आठ भव है ।
उदाहरण - कोई घोड़ा मरकर पुनः घोड़ा बने या गधा, ऊंट आदि बने तो निरंतर सात भव कर सकता है, आठवाँ भव यदि करे तो युगलिक तिर्यंच में चतुष्पद या खेचर का ही भव करेगा, क्योंकि पूर्व करोड़ वर्ष से अधिक आयुष्यवाले युगलिक ही होते हैं । चतुष्पद और खेचर को छोड़कर इतना अधिक आयुष्य अन्य किसी का नहीं होता है ।

अर्थात् तिर्यंचों में निरंतर होनेवाला आठवाँ भव तो युगलिक का ही होता है ।

उसी प्रकार मनुष्य मरकर पुनः मनुष्य बने तो निरंतर सात बार बन सकता है, आठवीं बार मनुष्य का भव मिले तो युगलिक मनुष्य का ही मिलता है ।

देव व नारक जीवों की स्वकाय स्थिति नहीं है, क्योंकि देव मरकर पुनः दूसरे ही भव में देव नहीं बनता है और नारक का जीव भी मरकर पुनः दूसरे भव में नारक नहीं बनता है ।

पाँच द्वार

एएसिं जीवाणं सरीरमाऊ, ठिई सकायम्मि ।
पाणा जोणि पमाणं जेसिं जं अत्थि तं भणिमो ।।26।।

एएसिं = इन
जीवाणं = जीवों के
सरीरं = शरीर
आऊ = आयुष्य
ठिई = स्थिति
सकायम्मि = स्वकाया में
पाणा = प्राण
जोणि = योनि
पमाणं = प्रमाण
जेसिं = जिनका
जं अत्थि = जो है
तं भणिमो = उसे कहता हूँ ।

इन जीवों में शरीर, आयुष्य, स्वकाय-स्थिति, प्राण और योनियों का जो प्रमाण है, उसे कहता हूँ।

1 से लेकर 25 गाथाओं में जीवों के स्वरूप का विचार पूर्ण हुआ । अब इन संसारी जीवों के शरीर की ऊँचाई कितनी है? उनका आयुष्य कितना है ? उनमें प्राण कितने हैं ? उनकी योनियाँ कितनी हैं ? और उनकी स्वकाय स्थिति कितनी है ? इत्यादि पाँच द्वारों के माध्यम से उन जीवों का विचार किया जाएगा ।

शरीर की ऊँचाई और आयु भी जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकार से बतायी जाएगी ।

सर्वज्ञ भगवंतों ने अपने केवलज्ञान से प्रत्यक्ष देखकर चौदह राजलोक में रहे जीवों के यथार्थ स्वरूप का जो वर्णन किया है, उसे जानने, समझने के बाद लगता है कि वर्तमान विज्ञान ने जीव-विज्ञान के बारे में जो कुछ बतलाया है वह कितना वामन है ।

एक महासागर के आगे एक जलबिंदु कितना तुच्छ है, उसी प्रकार सर्वज्ञ भगवंतों के अनंत ज्ञान के आगे वर्तमान वैज्ञानिकों की सिद्धियाँ या शोध भी महासागर के आगे बिन्दु तुल्य ही है ।

पहले आरे में मनुष्य की ऊँचाई 3 गाउ प्रमाण थी । उनका आयुष्य तीन पल्योपम जितना था, आज भी स्वयंभूरमण समुद्र में 1,000 योजन के मत्स्य पाए जाते हैं, देवताओं व नारकों का उत्कृष्ट आयुष्य 33 सागरोपम जितना है, इत्यादि अनेक बातें हैं, जिनके बारे में आज के वैज्ञानिक कल्पना भी नहीं कर पाते हैं । ये सब बातें सामान्य ज्ञानवाले मानव के सोच के बाहर ही हैं ।

परंतु ये सब सत्य बातें सर्वज्ञ भगवंतों ने बतलाई हैं, अतः उनमें शंका को कोई स्थान ही नहीं हो सकता ।

हाँ ! श्रद्धा से गम्य कई पदार्थों को तर्क या दृष्टांत से समझाया नहीं जा सकता । उन्हें जानने के लिए या तो स्वयं को सर्वज्ञ बनना होगा या सर्वज्ञ भगवंतों के ज्ञान पर श्रद्धा रखनी होगी, तभी हम उनके अनंतज्ञान के अंश का भी लाभ उठा सकेंगे ।

[1]

पहला द्वार–शरीर की ऊँचाई

--- ✿ ✿ ✿ ---

एकेन्द्रिय जीवों की ऊँचाई

अंगुल असंखभागो सरीरमेगिंदियाणं सव्वेसिं ।
जोयण सहस्समहियं, नवरं पत्तेयरुक्खाणं ।।27।।

अंगुल असंखभागो = अंगुल का असंख्यातवाँ भाग
सरीरं = शरीर की ऊँचाई
एगिंदियाणं = एकेन्द्रियों का
सव्वेसिं = सभी का
जोयण सहस्स = एक हजार योजन
अहियं = अधिक
नवरं = परंतु
पत्तेय = प्रत्येक
रुक्खाणं = वनस्पति का ।

✿ सभी एकेन्द्रिय जीवों के शरीर की ऊँचाई अंगुल के असंख्य भाग जितनी है, परंतु प्रत्येक वनस्पतिकाय का शरीर एक हजार योजन से कुछ अधिक है ।

✿ एकेन्द्रिय जीवों के कुल 22 भेद हैं, उसमें मात्र प्रत्येक वनस्पतिकाय के एक भेद को छोड़कर शेष 21 भेदवाले एकेन्द्रिय जीवों के शरीर की जघन्य और उत्कृष्ट ऊँचाई अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी है ।

असंख्य की संख्या के असंख्य भेद हैं । यद्यपि जघन्य और उत्कृष्ट शरीर एक समान नहीं है, फिर भी आखिर है तो अंगुल के असंख्य भाग जितना ही ।

सभी एकेन्द्रिय जीवों के शरीर की अवगाहना भी एक समान नहीं है ।
उसमें रही तरतमता निम्नानुसार है-

सबसे छोटा शरीर सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय के जीवों का होता है ।

सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय से असंख्य गुणा बड़ा शरीर सूक्ष्म वायुकाय के जीवों का होता है ।

सूक्ष्म वायुकाय से असंख्य गुणा बड़ा शरीर सूक्ष्म अप्काय के जीवों का होता है ।

सूक्ष्म अप्काय से असंख्य गुणा बड़ा शरीर सूक्ष्म पृथ्वीकाय के जीवों का होता है ।

सूक्ष्म पृथ्वीकाय से असंख्य गुणा बड़ा शरीर बादर वायुकाय के जीवों का होता है ।

बादर वायुकाय से असंख्य गुणा बड़ा शरीर बादर अग्निकाय के जीवों का होता है ।

बादर अग्निकाय से असंख्य गुणा बड़ा शरीर बादर अप्काय के जीवों का होता है ।

बादर अप्काय के जीवों से असंख्य गुणा बड़ा शरीर बादर पृथ्वीकाय के जीवों का होता है ।

बादर पृथ्वीकाय के जीवों से असंख्य गुणा बड़ा शरीर बादर साधारण वनस्पतिकाय के जीवों का होता है ।

इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से छोटे-बड़े शरीर होते हुए भी वे सभी शरीर प्रमाण में अंगुल के असंख्य भाग प्रमाण ही होते हैं ।

प्रत्येक वनस्पतिकाय की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन से भी कुछ अधिक होती है ।

एक हजार योजन गहरे समुद्र में जो वनस्पति पाई जाती है, वह एक हजार योजन से भी अधिक ऊँचाई वाली होती हैं, क्योंकि एक हजार योजन तक तो वह पानी में होती है, ऊपर का जो भाग है, वह अधिक समझना चाहिए ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव बहुत बड़ी संख्या में इकट्ठे हो जाएँ तो भी हम उन्हें अपनी आँखों से देख नहीं सकते हैं ।

एक आंवले प्रमाण पृथ्वीकाय में जितने जीव हैं, उन जीवों का शरीर सरसव प्रमाण का हो जाय तो पूरे जंबुद्वीप में भी वे समा नहीं सकते हैं ।

पानी की एक बूँद में जितने अप्काय के जीव हैं, वे कबूतर जितना शरीर बना दे तो संपूर्ण जंबुद्वीप में भी समा नहीं सकेंगे ।

विकलेन्द्रिय जीवों की ऊँचाई

--- ✿ ✿ ✿ ---

बारस जोयण तिन्नेव गाउआ जोयणं च अणुक्कमसो ।
बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय देहमुच्चतं ।।28।।

बारस जोयण = बारह योजन
तिन्नेव = तीन ही
गाउआ = गव्यूत (गाउ)
जोयणं = योजन
च = तथा
अणुक्कमसो = क्रमशः
बेइंदिय = दो इंद्रियवाले
तेइंदिय = तीन इंद्रियवाले
चउरिंदिय = चार इंदियवाले
देहमुच्चतं = देह की ऊँचाई

✿ दो इंद्रियवाले, तीन इंद्रियवाले और चार इन्द्रियवाले जीवों के शरीर की ऊँचाई क्रमशः बारह योजन, तीन गाउ और एक योजन प्रमाण होती है ।

✿ विकलेन्द्रिय जीवों में ऊँचाई का अर्थ लंबाई समझना चाहिए ! विकलेन्द्रिय जीव बहुत ऊँचे नहीं, बल्कि लंबे होते हैं ।

✿ बेइंद्रिय जीवों की अधिकतम लंबाई 12 योजन प्रमाण होती है । इतने बड़े-बड़े केंचुए होते हैं कि चक्रवर्ती का सैन्य भी उन पर खड़ा रह सकता है ।

✿ शास्त्र में बात आती है कि केंचुए पर चक्रवर्ती का सैन्य खड़ा हो और केंचुआ हट जाय तो चक्रवर्ती का सैन्य नीचे गिर सकता है ।

✿ ढाई द्विप के बाहर लंबी-चौड़ी कायावाले विकलेन्द्रिय जीव पाए जाते हैं ।

नारकी जीवों की ऊँचाई

--- ✿ ✿ ✿ ---

धणुसयपंचपमाणा, नेरइया सत्तमाइ पुढवीए ।
तत्तो अद्धद्धूणा नेया रयणप्पहा जाव ।।29।।

धणुसयपंच = पाँच सौ धनुष
पमाणा = प्रमाण
नेरइया = नारकी
सत्तमाइ = सातवीं आदि
पुढवीए = पृथ्वी
तत्तो = वहाँ से
अद्धद्धूणा = आधी-आधी न्यून
नेया = जानना चाहिए
रयणप्पहा = रत्नप्रभा
जाव = तक ।

☝सातवीं पृथ्वी में नारक जीवों के शरीर की ऊँचाई 500 धनुष प्रमाण है, वहाँ से रत्नप्रभा तक आधी-आधी समझनी चाहिए ।

नारक जीवों की ऊँचाई –

--- ✿ ✿ ✿ ---

नरक - 1.
नारक पृथ्वी - रत्नप्रभा
मूलशरीर की ऊँचाई धनुष-अंगुल - 7 3/4 -6
उत्तर वैक्रिय की ऊँचाई धनुष-अंगुल - 15 1/2 - 12
~~~~~~~~~~~~~~~~~~

नरक - 2.
नारक पृथ्वी - शर्कराप्रभा
मूलशरीर की ऊँचाई धनुष-अंगुल - 15 1/2 - 12
उत्तर वैक्रिय की ऊँचाई धनुष-अंगुल - 31 1/4
~~~~~~~~~~~~~~~~~

नरक - 3.
नारक पृथ्वी - वालुकाप्रभा
मूलशरीर की ऊँचाई धनुष-अंगुल - 31 1/4

उत्तर वैक्रिय की ऊँचाई धनुष-अंगुल - 62 1/2
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

नरक - 4.
नारक पृथ्वी - पंकप्रभा
मूलशरीर की ऊँचाई धनुष-अंगुल - 62 1/2
उत्तर वैक्रिय की ऊँचाई धनुष-अंगुल - 125
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

नरक - 5.
नारक पृथ्वी - धूमप्रभा
मूलशरीर की ऊँचाई धनुष-अंगुल - 125
उत्तर वैक्रिय की ऊँचाई धनुष-अंगुल - 250
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

नरक - 6.
नारक पृथ्वी - तमःप्रभा
मूलशरीर की ऊँचाई धनुष-अंगुल - 250
उत्तर वैक्रिय की ऊँचाई धनुष-अंगुल - 500
~~~~~~~~~~~~~~~~~~

नरक - 7.
नारक पृथ्वी - महातमःप्रभा
मूलशरीर की ऊँचाई धनुष-अंगुल - 500
उत्तर वैक्रिय की ऊँचाई धनुष-अंगुल - 1000
~~~~~~~~~~~~~~~~~~

✿ सात नरक पृथ्वियों में जो ऊँचाई बतलाई है, वह स्थूल से बतलाई है बाकी तो सभी नरक पृथ्वियों में अलग-अलग संख्या में प्रतर आए हुए हैं । उन प्रतरों में पैदा होने वाले नारकों की ऊँचाई भी भिन्न-भिन्न है ।

प्रस्तुत प्रकरण में जीवों के स्वरूप का स्थूल ज्ञान होने से यहाँ बहुत सूक्ष्मता से नहीं बतलाया है ।

✿ नारक जीवों के पास वैक्रिय लब्धि भी होती है, उस लब्धि द्वारा वे उत्तर वैक्रिय शरीर की रचना करते हैं ।

जिन नारक जीवों का जो मूल वैक्रिय शरीर होता है, वे उससे दुगुना वैक्रिय शरीर बना सकते हैं ।

जैसे - सातवीं नरक के जीव का मूल शरीर 500 धनुष प्रमाण है तो वे अपने मूल शरीर से दुगुना अर्थात् 1000 धनुष प्रमाण उत्तर वैक्रिय शरीर बना सकते हैं, उससे अधिक नहीं!

गर्भज तिर्यंचों की ऊँचाई

--- ✿❀✿❀✿❀ ---

जोयण सहस्स माणा मच्छा उरगा य गब्भया हुंति ।
धणुह पुहुत्तं पक्खिसु, भुअचारी गाउह पुहुत्तं ।।30।।

जोयण सहस्स = एक हजार योजन
माणा = प्रमाण
~~~~~~~~~~~~~~~~~~

मच्छा = मत्स्य
उरगा = उर परिसर्प
य = और
गब्भया = गर्भज
हुंति = होते हैं
धणुह पुहुत्तं = धनुष पृथक्त्व
पक्खिसु = पक्षियों में
भुअचारी = भुजपरिसर्प
गाउअ = गाउ
पुहुत्तं = पृथक्त्व

✿ मत्स्य व गर्भज उर परिसर्प एक हजार योजन जितने लंबे होते हैं । पक्षियों की ऊँचाई धनुष पृथक्त्व और भुजपरिसर्प की ऊँचाई गाउ पृथक्त्व प्रमाण होती है ।

✿ संमूर्च्छिम और गर्भज दोनों प्रकार के जलचर प्राणी-मत्स्य आदि की लंबाई एक हजार योजन प्रमाण होती है । उर परिसर्प अर्थात् छाती से रेंगकर चलनेवाले सर्प आदि की लंबाई भी एक हजार योजन प्रमाण है ।

✿ स्वयंभूरमण समुद्र जो मध्यलोक में सबसे बड़ा, आधे राजलोक के विस्तारवाला समुद्र है, उस समुद्र में एक हजार योजन लंबे मत्स्य पाए जाते हैं ।

गर्भज खेचर (आकाश में उड़ने वाले पक्षी) की लंबाई धनुष पृथक्त्व अर्थात् दो से नौ धनुष प्रमाण है । भुज परिसर्प अर्थात् भुजाओं के बल पर चलने वाले जीवों की लंबाई धनुष पृथक्त्व अर्थात् दो से लेकर नौ धनुष प्रमाण है ।

खयरा धणुह पुहुत्तं, भुयगा उरगा य जोयण पुहुत्तं ।
गाउअ पुहुत्तं मित्ता, संमुच्छिमा चउप्पया भणिया।।31।।

खयरा = खेचर
धणुह पुहुत्तं = धनुष पृथक्त्व
भुयगा = भुज परिसर्प
उरगा = उर परिसर्प
य = तथा
जोयण पुहुत्तं = योजन पृथक्त्व
गाउअ = गव्यूत
पुहुत्तं मित्ता = पृथक्त्व मापवाले
संमुच्छिमा = संमूर्च्छिम
चउप्पया = चतुष्पद
भणिया = कहे गए हैं ।

✿ संमूर्च्छिम खेचर और भुज परिसर्प धनुष पृथक्त्व, उर परिसर्प योजन पृथक्त्व, चतुष्पद गव्यूत मापवाले हैं ।

✿ नर-मादा के संयोग बिना वातावरण से सहज पैदा होने वाले संमूर्च्छिम खेचर और भुज परिसर्प की लंबाई 2 से 9 धनुष प्रमाण, संमूर्च्छिम उर परिसर्प की 2 से 9 योजन, संमूर्च्छिम चतुष्पद की 2 से 9 कोस तथा संमूर्च्छिम की एक हजार योजन से कुछ अधिक ऊँचाई होती है ।

गर्भज चतुष्पद व मनुष्य

--- ✿ ✿ ✿ ---

छच्चेव गाउआई, चउप्पया गब्भया मुणेयव्वा ।
कोसतिगं च मणुस्सा, उक्कोस सरीरमाणेणं ।।32।।

छच्चेव = छ ही
गाउआइ = कोस
चउप्पया = चतुष्पद
गब्भया = गर्भज
मुणेयव्वा = जानना चाहिए
कोसतिगं = तीन कोस
च = और
मणुस्सा = मनुष्य
उक्कोस = उत्कृष्ट
सरीर माणेणं = शरीर प्रमाण ।

✿ गर्भज चतुष्पद की ऊँचाई छह कोस की होती है और मनुष्य के शरीर की ऊँचाई तीन कोस होती है ।

✿ भरत और ऐरावत क्षेत्र में काल की व्यवस्था है । उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में छः-छः आरे होते हैं । उन आरों में जीवों की ऊँचाई और आयुष्य घटता-बढ़ता रहता है ।

अकर्मभूमि रूपी युगलिक क्षेत्रों में और महाविदेह क्षेत्र में अवस्थित भाव होते हैं, वहाँ जीवों की ऊँचाई और आयुष्य निश्चित होते हैं ।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के पहले और उत्सर्पिणी काल के छठे आरे में जो भाव होते हैं, वे भाव देवकुरु और उत्तरकुरु में हमेशा में हमेशा रहते हैं ।

गर्भज चतुष्पद और गर्भज मनुष्यों की जो उत्कृष्ट ऊँचाई बतलाई है, वह उत्कृष्ट ऊँचाई अर्थात् गर्भज चतुष्पदों की छः कोस प्रमाण और गर्भज मनुष्य की तीन कोस प्रमाण इन क्षेत्रों में हमेशा होती है ।

देवों की दिव्य दुनिया

--- ✿ ✿ ---

इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर कई उत्तम आत्माओं के चरित्रों का आलेखन हुआ है । मनुष्य भव में जो आत्माएँ संपूर्ण कर्मों का क्षय कर देती हैं, वे आत्माएँ तो देह त्याग कर सीधी मोक्ष में चली जाती हैं, जहाँ वे आत्माएँ सदा काल के लिए रहती हैं, वे आत्माएँ जन्म-जरा-मृत्यु-आधि-व्याधि-उपाधि, रोग-शोक-भय आदि से सर्वथा मुक्त हो जाती हैं, परंतु जो आत्माएँ सर्व कर्मों का क्षय नहीं करती हैं, उन आत्माओं को तो पुनः जन्म धारण करना ही पड़ता है ।

इस विराट विश्व में जो अनंतानंत आत्माएँ हैं, वे जन्म-मरण को धारण करती हुई देव, मनुष्य, नरक और तिर्यंच इन चार गतियों में भ्रमण करती हैं ।

जो आत्माएँ अत्यधिक पाप करती हैं, वे आत्माएँ मरकर व तिर्यंचगति में जाती हैं ।

जो आत्माएँ अत्यधिक पुण्य करती हैं, वे आत्माएँ मरकर देव व मनुष्य गति में जाती हैं ।

लोकस्थिति ही ऐसी है कि कोई भी देव मरकर पुनः दूसरे ही भव में देव नहीं बनता है और नरक के जीव भी मरकर देवलोक में उत्पन्न नहीं होते हैं। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य और तिर्यंच ही मरकर देवलोक में पैदा होते हैं ।

देवगति और मोक्ष में बहुत बड़ा अंतर है । देवगति के देव भी इस संसार में ही हैं । उनके भी जन्म-मरण के चक्कर चालू ही है । देवगति के देव भी पूर्ण रूप से सुखी नहीं हैं । राग-द्वेष, लोभ-ईर्ष्या आदि से वे भी दुःखी होते हैं । आयुष्य पूर्ण होने पर उन्हें भी देवलोक के दिव्य दुनिया का त्याग कर मनुष्य या तिर्यंच गति में जाना ही पड़ता है।

तो आइए ! उस देवलोक की दुनिया का भी परिचय प्राप्त करें । देवलोक की दुनिया के बोध से हमें दो फायदे हैं -

(1) पूर्व के पुण्य के उदय से मनुष्य भव में जो कुछ धन-सुख-संपत्ति मिली है, वह देवलोक की समृद्धि के आगे कुछ भी नहीं है, अतः देवलोक की समृद्धि जान लेने पर मनुष्य लोक की धन-संपत्ति आदि का अभिमान गल जाता है ।

लाख रुपयों को प्राप्त कर व्यक्ति तभी तक अभिमान कर सकता है, जब तक उसके सामने कोई करोड़पति या अरबपति आकर खड़ा न हो जाय। करोड़पति को देखते ही लखपति का अभिमान राख में मिल जाता है।

(2) अतुलबली और अमाप संपत्ति के धनी ऐसे देवताओं को भी आयुष्य पूरा हो जाने पर एक दिन सबकुछ छोड़कर मरना पड़ता है और भयंकर गर्भावास आदि की पीड़ा सहन करनी पड़ती है ।

ये देवता मरकर पंचेन्द्रिय पशु-पक्षी और पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में भी चले जाते हैं, अतः यह देवलोक भी इच्छनीय नहीं है, इच्छनीय तो एक मात्र मोक्ष ही है, क्योंकि वहाँ जाने के बाद दुःख का लेश भी नहीं है ।

देवलोक की प्राप्ति यह तो पुण्य की लीला है और यह पुण्य तो कभी भी धोखा दे सकता है । अतः देवलोक की प्राप्ति भी हमारे जीवन का लक्ष्य नहीं होना चाहिए !

यद्यपि सभी देवता पंचेन्द्रिय कहलाते हैं, परंतु उनका जन्म मनुष्य या पंचेन्द्रिय तिर्यंच की तरह गर्भ से नहीं होता है, पुण्य के उदय से उन्हें गर्भ की पीड़ा सहन करनी नहीं पड़ती है ।

देवलोक में कुछ स्थलों पर विशिष्ट शय्याएँ होती हैं, जिनमें देव अपने शरीर की ऊँचाई, कांति श युवावस्था के साथ ही जन्म लेते हैं । देवताओं को बाल्यकाल बचपन नहीं होता है, वे सदैव युवावस्था में ही रहते हैं ।

देव शय्या में देवताओं के इस जन्म को 'उपपात' कहते हैं । एक अन्तर्मुहूर्त्त में ही देवताओं का शरीर तैयार हो जाता है ।

वृद्धावस्था के कारण जिस प्रकार मनुष्य का शरीर शिथिल कमजोर हो जाता है, ऐसी वृद्धावस्था देवताओं को नहीं होती है ।

मनुष्य और तिर्यंचों का शरीर औदारिक वर्गणा के पुद्गलों से बना होता है । मानव देह में हड्डी, मांस, खून, चर्बी आदि अशुचिकारक पदार्थ होते हैं, मानव देह की उत्पत्ति भी अशुचि में ही होती है, जबकि देवताओं का शरीर वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों से बना होता है । औदारिक वर्गणा के पुद्गलों की अपेक्षा वैक्रिय वर्गणा के पुद्गल अत्यंत शुभ और सूक्ष्म होते हैं ।

देवताओं के शरीर में किसी प्रकार की अशुचि, मल-मूत्र, मांस-चर्बी, हड्डी आदि नहीं होते हैं ।

मानव देह के साथ ज्वर, खांसी, सिरदर्द, पेट का दर्द, सर्दी, जुखाम, टी.बी., डायबीटीस, कैंसर, एड्स आदि अनेक प्रकार की बीमारियाँ जुड़ी हुई हैं जबकि देवताओं के शरीर में किसी प्रकार के शारीरिक रोग नहीं होते हैं ।

मनुष्य को रोग-निवारण के लिए हॉस्पीटल में जाना पड़ता है, यहाँ अनेक दर्दों के निवारण के लिए अनेक प्रकार की हास्पिटलें हैं, देवलोक में रोग का ही अभाव होने से किसी भी प्रकार की हॉस्पिटलें नहीं हैं । सामान्य मानव के आयुष्य पर किसी भी समय उपघात लग सकता है, क्योंकि उनका आयुष्य सोपघाती होता है, हाँ, तीर्थंकर, गणधर, चरम शरीरी आदि मनुष्यों का आयुष्य निरुपघाती होने से उनके आयुष्य पर किसी भी प्रकार का उपघात नहीं लगता है ।

देवताओं का आयुष्य तो निरुपघाती ही होता है अर्थात् वे अपने आयुष्य का पूर्ण उपयोग करते हैं, उनकी अकाल -मृत्यु नहीं होती है ।

देवताओं में आहार के मुख्य तीन भेद हैं -

1) ओजाहार, 2) लोमाहार और 3) कवलाहार ।

उत्पत्ति के प्रथम समय से शरीर पर्याप्ति की पूर्णता तक ग्रहण किए जा रहे पुद्गलों के आहार को ओजाहार कहते हैं ।

शरीर की पर्याप्ति पूर्ण होने पर स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा जो पुद्गलों का लेते हैं, उसे लोमाहार कहते हैं।

कवल से जो आहार लेते हैं, उसे कवलाहार कहते हैं ।

देवताओं को कवलाहार नहीं होता है ।

सर्व से जघन्य स्थितिवाले देवताओं को आहार की इच्छा एकांतर होती है ।

पल्योपम की स्थिति वाले देवताओं को 2 से 9 दिन के बाद आहार की इच्छा होती है ।

जितने सागरोपम स्थिति होती है, उतने हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा होती है ।

प्रश्न- देवता किस प्रकार आहार लेते हैं ?

उत्तर- देवताओं के आहार संबंधी उपर्युक्त समय-निर्देश लोमाहार संबंधी हैं ।

लोमाहार के दो प्रकार हैं 1) आभोग और 2) अनाभोग । इरादे पूर्वक जो लोमाहार किया जाता है, उसे आभोग लोमाहार कहते हैं और बिना इरादे के ही जो प्रतिसमय लोमाहार होता है, उसे अनाभोग लोमाहार कहते हैं ।

यहाँ देवताओं के आहार का अंतर आभोग लोमाहार की अपेक्षा समझना चाहिए ।

देवताओं को जब आहार की इच्छा होती है तब उनके पुण्योदय से मन से कल्पित आहार के शुभ पुद्गल स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा शरीर रूप में परिणत हो जाते हैं और उस समय मन में तृप्ति व आह्लाद को अनुभव होता है ।

श्वासोच्छवास -

--- ✿ ✿ ---

1) जघन्य स्थितिवाले देवता 7-7 स्तोक के बाद एक बार श्वास लेते हैं ।

2) पल्योपम की स्थितवाले देवता दिन में 1 बार श्वास लेते हैं ।

3) जितने सागरोपम की स्थिति होती है, वे देवता उतने पक्ष के बाद श्वास लेते हैं ।

देवताओं में काम-भोग -

देवताओं में स्त्री-पुरुष अर्थात् देव-देवी होते हैं, नपुंसक नहीं ।

देवियों की उत्पत्ति भी भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और सौधर्म व ईशान प्रथम दो वैमानिक देवलोक तक ही है ।

भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और प्रथम दो वैमानिक देवलोक के देव, मनुष्यों की तरह देवियों से काम-भोग करते हैं ।

तीसरे व चौथे देवलोक के देवता, स्पर्श (देवियों के विविध अंगों के स्पर्श) से कामसेवन करते हैं ।

पाँचवें व छठे देवलोक के देवता देवियों के स्वरूप दर्शन से कामसेवन करते हैं ।

सातवें-आठवें देवलोक के देवता, देवियों के मधुर संगीत मृदुहास्य आदि के श्रवण से कामसेवन करते हैं ।

नौवें-दसवें-ग्यारहवें तथा बारहवें देवलोक के देवता देवी का मन से संकल्प कर कामसेवन करते हैं।

नौ ग्रैवेयक व पाँच अनुत्तर के देवता मैथुन सेवन नहीं करते हैं ।

तीसरे आदि देवलोक में देवियाँ नहीं होती हैं, परंतु उन देवलोक के देवताओं के संकल्प मात्र से, देवी शक्ति से वे देवियाँ स्वयं ही उन देवताओं के पास पहुँच जाती हैं और उनकी इच्छाओं को पूर्ण करती हैं ।

सौधर्म व ईशान देवलोक में दो-दो प्रकार की देवियाँ होती हैं -

(1) परिगृहिता - किसी देव की पत्नी रूप में रही हुई देवी परिगृहिता कहलाती है ।

(2) अपरिगृहिता - जो सर्व सामान्य देव के उपभोग में आनेवाली अपरिगृहिता कहलाती है ।

वेदना - देवताओं को लगभग शाता वेदनीय का ही उदय होता है, बीच-बीच में अशाता का भी उदय होता है । सतत शाता वेदनीय का उदय छह मास तक रहता है, फिर अशाता का उदय होता है, जो उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त्त तक रहता है । फिर पुनः शाता का उदय चालू हो जाता है ।

देवलोक में उपपात -

(1) अन्य तीर्थिकी 12वें देवलोक तक उत्पन्न हो सकते हैं ।

(2) मिथ्यादृष्टि संयत 9वें ग्रैवेयक तक उत्पन्न हो सकते हैं ।

(3) सम्यग्दृष्टि साधु वैमानिक देव से लेकर सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हो सकते हैं ।

(4) चौदहपूर्वी 5वें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न हो सकते हैं ।

(5) पंचेन्द्रिय तिर्यंच मरकर 8वें देवलोक में पैदा सकते हैं ।

देवताओं के विमान -

--- 🌺🌿🌺🌿🌺🌿 ---

देवताओं के विमान लोकस्थिति से ही आकाश में बिना किसी आधार के रहे हुए हैं ।

तीर्थंकर के जन्माभिषेक, केवलज्ञान, निर्माण आदि के प्रसंग पर इन्द्रों के आसन स्वतः ही कंपित होते हैं ।

देवों के चार भेद -

देवों के मुख्य चार भेद हैं - 1) भवनपति, 2) व्यंतर, 3) ज्योतिष और 4) वैमानिक ।

भवनपति

रत्नप्रभा पृथ्वी जो 1 लाख 80 हजार मोटी है, उस पृथ्वी के ऊपर-नीचे 1-1 हजार छोड़, शेष 1,78,000 योजन पृथ्वी में भवनपति देवता रहते हैं ।

भवनपति निकाय के अधिकांश देव भवनों में रहते हैं, इस कारण उन्हें भवनपति कहते हैं । कुमार की तरह कांतदर्शन वाले, मृदु, ललित गतिवाले और क्रीड़ा में तत्पर होने से कुमार कहलाते हैं ।

असुरकुमार देव अधिकांशतः आवास में हैं, कभी-कभी भवनों में भी रहते हैं, जबकि नागकुमार आदि नौ प्रकार के देव प्रायः भवनों में ही रहते हैं ।

आवास देहप्रमाण और समचौरस होते हैं । चारों और से खुले होने से आवास मंडप जैसे लगते हैं, जबकि भवन बाहर से गोल व अंदर से समचौरस होते हैं ।

भवनों के तल भाग पुष्पकर्णिका के आकार के होते हैं। भवनों का विस्तार जघन्य से जंबूद्वीप प्रमाण और उत्कृष्ट से असंख्य योजन प्रमाण होता है ।

निकाय- 1. असुरकुमार
मुकुट में चिह्न - चूड़ामणि
शरीरवर्ण - श्याम
दक्षिण में भवन- 34 लाख
उत्तर में भवन- 30 लाख

निकाय- 2. नागकुमार
मुकुट में चिह्न - सर्पफणा
शरीरवर्ण - गौर
दक्षिण में भवन- 44 लाख
उत्तर में भवन- 40 लाख

निकाय- 3. विद्युतकुमार
मुकुट में चिह्न - वज्र
शरीरवर्ण - रक्त
दक्षिण में भवन- 38 लाख
उत्तर में भवन- 34 लाख

निकाय- 4. सुवर्णकुमार
मुकुट में चिह्न - गरुड
शरीरवर्ण - पीत
दक्षिण में भवन- 40 लाख
उत्तर में भवन- 36 लाख

निकाय- 5. अग्निकुमार
मुकुट में चिह्न - कलश
शरीरवर्ण - रक्त
दक्षिण में भवन- 40 लाख
उत्तर में भवन- 36 लाख

निकाय- 6. वायुकुमार
मुकुट में चिह्न - मगर
शरीरवर्ण - हरा
दक्षिण में भवन- 40 लाख
उत्तर में भवन- 36 लाख

निकाय- 7. स्तनितकुमार
मुकुट में चिह्न - शराव संपुट
शरीरवर्ण - पीला
दक्षिण में भवन- 40 लाख
उत्तर में भवन- 36 लाख

निकाय- 8. उद्धिकुमार
मुकुट में चिह्न - अश्व
शरीरवर्ण - गौर
दक्षिण में भवन- 40 लाख
उत्तर में भवन- 36 लाख

निकाय- 9. द्वीपकुमार
मुकुट में चिह्न - सिंह
शरीरवर्ण - रक्त
दक्षिण में भवन- 50 लाख
उत्तर में भवन- 46 लाख

निकाय- 10. दिक्कुमार
मुकुट में चिह्न - हाथी
शरीरवर्ण - पीला
दक्षिण में भवन- 40 लाख
उत्तर में भवन- 36 लाख

उपर्युक्त 10 प्रकार के भवनपति देव हैं, उनमें प्रत्येक में दो-दो इन्द्र होते हैं ।

दक्षिण दिशा के असुरकुमारों का स्वामी चमरेन्द्र है ।
वर्तमान में जो चमरेन्द्र है, वह पूर्वभव में पूरण नाम का तापस था । 12 वर्ष तक दुष्कर तप कर अंत में 1 मास का पादपगमन अनशन कर चमरेन्द्र बना । अपनी उत्पत्ति के बाद ज्ञानचक्षु द्वारा उसने अपने ऊपर रहे हुए सौधर्म इन्द्र को देखा, 'मेरे ऊपर यह कौन है ?' इस प्रकार विचार कर उत्तर वैक्रिय रूप कर अपने परिघ नामक शस्त्र को साथ लेकर सौधर्म सभा में जाकर सौधर्म इन्द्र को ललकारने लगा । चमरेन्द्र की इस बालिश चेष्टा को देख सौधर्म इन्द्र ने गुस्से में आकर उसके पीछे वज्र छोड़ा । वज्र को देख चमरेन्द्र डर गया और अपने रक्षण के लिए वीरप्रभु के दो चरणों के बीच घुस गया ।

शक्रेन्द्र ने जब चमरेन्द्र को प्रभु की शरण स्वीकारते हुए देखा, तभी चार अंगुल के अंतर में रहे वज्र का शक्रेन्द्र ने संहरण कर लिया ।

चमरेन्द्र द्वारा सौधर्म देवलोक में जाकर सौधर्म इन्द्र से लड़ने की घटना अनंतकाल में एक आश्चर्य समझना चाहिए ।

इस चमरेन्द्र के 64000 सामानिक देव व 33 त्रायस्त्रिंशक देव होते हैं ।

चमरेन्द्र की तीन पर्षदाएँ होती हैं -

--- ✿❀✿❀✿❀ ---

(1) अभ्यंतर पर्षदा -
इसमें 2 1/2 पल्योपम के आयुष्यवाले 24,000 देव व 1 1/2 पल्योपम की स्थितिवाली 250 देवियाँ होती हैं ।

(2) मध्यम पर्षदा -
इसमें दो पल्योपम की स्थितिवाले 28,000 देव और एक पल्योपम के आयुष्यवाली 300 देवियाँ होती हैं ।

(3) बाह्य पर्षदा -
इसमें 1 1/2 पल्योपम की स्थितिवाले 32,000 देव व 1/2 पल्योपम की स्थितिवाली 350 देवियाँ होती हैं ।

✿ चमरेन्द्र के 5 अग्रमहिषियाँ होती हैं ।

✿ चमरेन्द्र के 4 लोकपाल होते हैं ।

✿ चमरेन्द्र के 7 सैन्य व 7 सेनाधिपति होते हैं ।

✿ चमरेन्द्र के चारों दिशाओं में 64,000 आत्मरक्षक देव होते हैं ।

1- असुरकुमार– के उत्तर दिशा का स्वामी "बलीन्द्र" है । इस बलीन्द्र के 60,000 सामानिक देव और 33सस त्रायस्त्रिंशक देव हैं । इस बलीन्द्र के भी 4 लोकपाल, 5 अग्र महिषी, 7 सेना व 7 सेनाधिपति आदि चमरेन्द्र की तरह विशाल समृद्धि है ।

❀ असुरकुमार देवों का देह प्रमाण उत्कृष्ट से 7 हाथ होता है । उत्कृष्ट से उत्तर वैक्रिय शरीर 1 लाख योजन प्रमाण है । दक्षिण दिशा के देवों का आयुष्य 1 सागरोपम व उत्तर दिशा के देवों का आयुष्य 1 सागरोपम से कुछ अधिक है ।

2- नागकुमार– के दक्षिण दिशा का इन्द्र "धरणेन्द्र" है ।वर्तमान में जो धरणेन्द्र है, वह पूर्व भव में साँप था । कमठ तापस पंचाग्नि तप कर रहा था, उस काष्ठ में वह साँप जल रहा था, तभी पार्श्वकुमार ने साँप को बाहर निकलवाया और उसे नवकार सुनाया । नवकार के प्रभाव से ही वह साँप मरकर धरणेन्द्र बना है ।

✿ इसी धरणेन्द्र ने पार्श्व प्रभु पर मेघमाली के उपसर्ग को दूर किया था ।

✿ इस धरणेन्द्र के तीन पर्षदाएँ हैं, जिनमें 60, 70 और 80,000 देव हैं। धरणेन्द्र के छः पटरानी हैं । उसके भी आत्मरक्षक देव, सेना, सेनापति आदि विशाल परिवार है ।

✿ नागकुमार के उत्तर दिशा का इन्द्र भूतानंद है।भूतानंद इन्द्र के भी तीन पर्षदाएँ हैं, जिनमें 50, 60 और 70 हजार देव हैं। तीन पर्षदाओं में 225, 200 व 100 देवियाँ हैं ।भूतानंद इन्द्र के 6,000 सामानिक देव, सेना, सेनापति व चारों दिशाओं में 6-6 हजार आत्मरक्षक देव हैं ।

✿ आगे के आठ दक्षिण दिशा के इन्द्रों के सामानिक देव, पर्षदा देव-देवी की संख्या, लोकपाल, सैन्य, सेनापति आदि परिवार धरणेन्द्र के परिवार के समान समझना चाहिए ।

✿ इसी प्रकार उत्तर दिशा के आठ इन्द्रों की सभी स्थिति भूतानंद इन्द्र के समान समझनी चाहिए।

3- सुपर्णकुमार– के दक्षिण व उत्तर दिशा के इन्द्र का नाम वेणुदेव और वेणुदारी हैं ।

4- विद्युतकुमार– के दक्षिण-उत्तर इन्द्रों के पाम हरिकांत और हरिस्सह हैं ।

5- अग्निकुमार– के दक्षिण व उत्तर दिशा के इन्द्रों के नाम अग्निशिख व अग्निमाणव हैं ।

6- द्वीपकुमार– के दक्षिण व उत्तर दिशा के इन्द्रों के नाम पूर्ण और वसिष्ठ हैं ।

7- उदधिकुमार– के दक्षिण व उत्तर दिशा के इन्द्रों के नाम जलकांत और जलप्रभ हैं ।

8- दिग्कुमार_ के दक्षिण व उत्तर दिशा के इन्द्रों के अमितगति और अमितवाहन हैं ।

9- वायुकुमार– के दक्षिण व उत्तर दिशा के इन्द्रों के नाम वेलंब और प्रभंजन हैं ।

10- स्तनित कुमार– के दक्षिण व उत्तर दिशा के इन्द्रों के नाम घोष और महाघोष हैं ।

उपपात

--- ✿🌿✿🌿 ---

संमूर्च्छिम और गर्भज तिर्यंच, छः संघयण वाले गर्भज मनुष्य, मिथ्यात्वी अज्ञानतप करनेवाले और द्वैपायन ऋषि की तरह अत्यंत क्रोधी, तप का गर्व करनेवाले अरिहंत शासन की विराधना के बाद उन निकायों में उत्पन्न होते हैं ।

यहाँ से च्यवकर संख्यात स्थितिवाले गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच, पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में पैदा होते हैं ।

🌿 इन देवों को कृष्ण, नील, तेजो और कापोत ये चार लेश्याएँ होती हैं ।

15 प्रकार के परमाधामी भी भवनपति निकाय में ही आते हैं । 15 परमाधामियों – (1) अंब, (2) अंबरीष, (3) श्याम, (4) शबल, (5) रूद्र, (6) उपरूद्र, (7) काल, (8) महाकाल, (9) असि, (10) असिपत्रवन, (11) कुंभी, (12) वालुका, (13) खरस्वर, (14) वैतरणी, (15) महाघोष

व्यंतर निकायः

--- ✿🌿✿🌿 ---

🌿 रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के 1000 योजन में से ऊपर-नीचे 100-100 योजन छोड़ने पर 800 योजन का जो अंतर रहता है, उसमें आठ प्रकार के व्यंतर निकाय के देव रहते हैं तथा ऊपर से 100 योजन छोड़े गए हैं, उस 100 योजन में से ऊपर - नीचे 10-10 योजन छोड़ने पर जो 80 योजन का अंतर रहता है, उसमें 8 प्रकार के वाण व्यंतर निकाय के देव रहते हैं।

🌿 ये व्यंतर निकाय के देव ऊपर, नीचे और तिर्च्छा लोक में भवन, शहर और आवासों में रहते हैं। अन्य-अन्य पर्वत गुफा, जंगल व द्वीपों में भी रहते हैं, विविध अंतर वाले होने से उनका व्यंतर नाम रूढ़ हुआ है ।

आठ व्यंतर

--- 🌺🌿🌺🌿 ---

1. किन्नर~~ इसके किन्नर, आदि 10 भेद हैं ।

2. किंपुरुष~~ इसके पुरुष आदि 10 भेद हैं ।

3. महोरग~~ इसके भुजग आदि 10 भेद हैं ।

4, गांधर्व~~ इसके हाहा आदि 12 भेद हैं ।

5- यक्ष~~ इसके पूर्णभद्र आदि 13 भेद हैं ।

6. राक्षस~~ इसके भीम आदि 7 भेद हैं ।

7. भूत~~ इसके सुरुप आदि 9 भेद हैं ।

8. पिशाच~~ इसके कुष्मांड आदि 15 भेद हैं ।

आठ वाण व्यंतर

--- 🌺🌿🌺🌿 ---

(1) अणपन्नी, (2) पणपन्नी, (3) इसीवादी, (4) भूतवादी, (5) कंदित, (6) महाकंदित, (7) कोहंड, (8) पतंग

दस तिर्यक्जृंभक

--- 🌺🌿🌺🌿 ---

(1) अन्नजृंभक, (2) पानजृंभक, (3) वस्त्रजृंभक, (4) लेणजृंभक, (5) पुष्पजृंभक, (6) फलजृंभक, (7) पुष्पफल जृंभक, (8) शयनजृंभक, (9) विद्याजृंभक, (10) अवियत्त जृंभक ।

ज्योतिष निकाय

--- 🌺🌿🌺🌿 ---

ज्योतिष निकाय के सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा ये पाँच भेद हैं ।

समभूतला पृथ्वी से 790 योजन की ऊँचाई पर तारे आए हुए हैं ।

तारों से 10 योजन ऊपर सूर्य का विमान है ।

सूर्य से 80 योजन ऊपर चंद्र का विमान है ।

चंद्र से 4 योजन ऊपर नक्षत्रों का विमान हैं ।

नक्षत्रों से 4 योजन ऊपर बुधग्रह का विमान है ।

बुध से 3 योजन ऊपर शुक्र का विमान है ।

शुक्र से 3 योजन ऊपर गुरु का विमान है ।

गुरु से 3 योजन ऊपर मंगल का विमान है ।

मंगल से 3 योजन ऊपर शनि का विमान है ।

इस प्रकार संपूर्ण ज्योतिष चक्र ऊँचाई में 110 योजन और लंबाई में असंख्य द्वीप समुद्र-प्रमाण है। सूर्य आदि देव उनके विमान ज्योतिष-प्रकाशमान होने से उन्हें ज्योतिष्क कहा जाता है । सूर्य आदि देवों के मुकुट में सूर्य आदि के प्रभामंडल का चिह्न होता है ।

परिभ्रमण

--- ✿❀✿❀ ---

पाँचों प्रकार के ज्योतिष्क विमान मनुष्यलोक-ढाईद्वीप में मेरुपर्वत के चारों ओर प्रदक्षिणा आकार में घूमते हैं । मेरुपर्वत से 1121 योजन दूर रहकर घूमते हैं ।

मनुष्यलोक में संख्या

--- ✿❀✿❀ ---

जंबूद्वीप में 2, लवण समुद्र में 4, धातकी खंड में 12, कालोदधि समुद्र में 42 तथा पुष्करार्ध में 72 सूर्य और चंद्र हैं । इस प्रकार ढाई द्वीप में 132 सूर्य और 132 चंद्र हैं ।

ग्रह, नक्षत्र और तारा चंद्र का ही परिवार है, और जो चंद्र का परिवार है, वो ही सूर्य का भी परिवार है । सूर्य का अलग परिवार नहीं है ।

1 चंद्र का परिवार 88 ग्रह, 28 नक्षत्र और 66,975 कोड़ाकोड़ी तारा हैं ।

द्वीप-समुद्र - जंबूद्वीप

--- ✿❀✿❀ ---

ग्रह - 176
नक्षत्र - 56
तारा - 1,33,950
कोड़ाकोड़ी

द्वीप-समुद्र - लवण समुद्र
ग्रह - 352
नक्षत्र - 112
तारा - 2,67,900

कोड़ाकोड़ी

द्वीप-समुद्र - धातकी खंड
———————
ग्रह - 1,056
नक्षत्र - 337
तारा - 8,03,700
कोड़ाकोड़ी

द्वीप-समुद्र - कालोदधि

--- 🌺🌿🌺🌿 ---
ग्रह - 3,696
नक्षत्र - 1,176
तारा - 28,12,950
कोड़ाकोड़ी

द्वीप-समुद्र - पुष्करार्ध

--- 🌺🌿🌺🌿 ---
ग्रह - 6,336
नक्षत्र - 2,013
तारा - 48,22,200
कोड़ाकोड़ी

🌿 मनुष्यलोक में सूर्य आदि के ये विमान सदैव घूमते रहते हैं। चंद्र आदि से सबकी गति क्रमशः अधिक-अधिक है। चंद्र की गति सबसे कम है, उससे अधिक सूर्य की गति है। सूर्य से ग्रह की गति अधिक है, ग्रह से नक्षत्र की गति अधिक है और नक्षत्र से तारों की गति अधिक है।

🌿 तारों की ऋद्धि सबसे कम है, तारों से नक्षत्र की ऋद्धि अधिक है। नक्षत्र से ग्रह की ऋद्धि अधिक है। ग्रह से सूर्य की ऋद्धि अधिक है और सूर्य से चंद्र की ऋद्धि अधिक है।

सूर्य आदि की गति के कारण ही कालविभाग का व्यवहार चलता है। काल के अविभाज्य अंश को समय कहते हैं। असंख्य समय की 1 आवलिका होती है।

अवस्थित सूर्य-चंद्र

--- 🌺🌿🌺🌿 ---

मनुष्यलोक के बाहर असंख्य सूर्य-चंद्र आदि के विमान हैं, परंतु वे सब स्थिर हैं ।

🌿 सूर्य-चंद्र आदि स्थिर होने से जिस क्षेत्र में सूर्य आदि का प्रकाश नहीं पहुँचता है, उस क्षेत्र में सदा काल अंधेरा ही रहता है ।

🌿 मनुष्यलोक के बाहर के सूर्य-चंद्र के विमानों का प्रकाश समशीतोष्ण होता है अर्थात् सूर्य के किरण अतितीक्ष्ण नहीं होते हैं और चंद्र के किरण अतिशीतल नहीं होते हैं ।

वैमानिक देव

--- 🌺🌿🌺🌿 ---

🌿 विमान में उत्पन्न होने के कारण इन्हें वैमानिक देव कहते हैं । वैमानिक देवों के मुख्य दो भेद होते हैं -

(1) कल्पोपपन्न और (2) कल्पातीत

🌿 जहाँ छोटे-बड़े की मर्यादा है, उस देवलोक को कल्प कहते हैं । कल्प में उत्पन्न हुए देवताओं को कल्पोपपन्न और जहाँ कल्प नहीं हैं, ऐसे देवलोक में उत्पन्न हुए देवताओं को कल्पातीत कहते हैं ।

12 देवलोक के कल्प होने से उन्हें कल्पोपपन्न कहते हैं उसके बाद 9 ग्रैवेयक और 5 अनुत्तर में कल्प का अभाव होने से उन देवताओं को कल्पातीत कहते हैं ।

🌿 ज्योतिष चक्र से ऊपर असंख्य योजन जाने पर मेरु के दक्षिण भाग में सौधर्म और उत्तर भाग में ईशान कल्प आया हुआ है । ईशान देवलोक कुछ ऊपर है - दोनों समश्रेणी में नहीं है ।

🌿 सौधर्म से असंख्य योजन ऊपर समश्रेणी में सनतकुमार का कल्प है । ईशान से असंख्य योजन ऊपर समश्रेणी में माहेन्द्र कल्प है ।

🌿 सनतकुमार व माहेन्द्र के बीच में ऊपर ब्रह्मलोक है । उसके ऊपर-ऊपर क्रमशः लांतक, महाशुक्र और सहस्त्रार देवलोक है ।
उसके ऊपर सौधर्म-ईशान की तरह आनत और प्राणत दो कल्प आए हुए हैं और उसके ऊपर आचरण और अच्युत आए हुए हैं ।

सौधर्म ईशान देवलोक - ये विमान पूर्व-पश्चिम में लंबे व उत्तर-दक्षिण में चौड़े असंख्य कोडा कोडी योजन प्रणाम है ।

इन दोनों देवलोक में 13-13 प्रत्तर हैं । प्रत्येक प्रत्तर के बीच में इन्द्रक विमान हैं ।

🌿 तीसरे चौथे देवलोक में 12-12 प्रत्तर हैं । पाँचवें देवलोक में 6 प्रत्तर हैं। छठें देवलोक में 5 प्रत्तर हैं! सातवें-आठवें देवलोक के 4-4 प्रत्तर हैं।

नौवें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक में 4-4 प्रत्तर हैं ।9 ग्रैवेयक के 9 प्रत्तर तथा अनुत्तर विमान का 1 प्रत्तर है।

❃ इस प्रकार उर्ध्वलोक में वैमानिक देवताओं के कुल 62 प्रत्तर हैं ।

सौधर्म और ईशान देवलोक में 965 गोलविमान, 988 त्रिकोण विमान, 972 चौरस विमान हैं । पुष्पाशकीर्ण विमानों की संख्या 59, 97, 075 है । इस प्रकार दोनों विमानों में कुल 60 लाख विमान हैं, जिनमें से 32 लाख सौधर्म देवलोक के और 28 लाख ईशान देवलोक के हैं ।

इन सभी विमानों की पृथ्वीलोक स्वभाव से ही घनोदधि पर रही हुई है।

~~~~~~~~~~~~~~~~~

—प्राण द्वार—

--- 🌸☘ 🌸☘ 🌸☘ ---

एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय के प्राण

दसहा जिआण पाणा, इंदिय उसास आउबल रूवा ।
एगिंदिएसु चउरो, विगलेसु छ सत्त अट्ठेव ।।42।।

दसहा = दश प्रकार के
जिआण = जीवों के
पाणा = प्राण
इंदिय = इंद्रियाँ
उसास = श्वासोच्छवास
आउ = आयुष्य
बलरूवा = बलस्वरूप
एगिंदिएसु = एकेन्द्रियों में
चउरो = चार
विगलेसु = विकलेन्द्रियों में
छ = छह
सत्त = सात
अट्ठेव = आठ

भावार्थ — जीवों के दस प्राण होते हैं । पाँच इन्द्रियाँ, श्वासोच्छवास, आयुष्य और मनोबल, वचनबल और कायबल ।

एकेन्द्रियों में चार तथा विकलेन्द्रिय में क्रमशः छः, सात और आठ प्राण होते हैं ।

विवेचन – जीवन जीने की आत्मा की शक्ति विशेष को प्राण कहते हैं । आत्माओं में ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि भाव-प्राण होते हैं ।
~~~~~~~~~~~~~~~~~

संसारी जीवों में दस प्राण होते हैं । इन प्राणों के आधार पर ही संसारी जीव अपना जीवन जीते हैं । इन्हें द्रव्य प्राण भी कहते हैं । इन प्राणों के नाश से संसारी जीवों की मृत्यु होती है ।

तत्त्वार्थ सूत्र में हिंसा की व्याख्या करते हुए कहा है- 'प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा' प्रमाद के योग से संसारी जीवों के प्राणों का नाश करना हिंसा है ।

सभी संसारी जीवों के ये प्राण एक समान नहीं होते हैं ।

🌹10 प्राणों का स्वरूप🌹
---🌹☘ 🌹☘ 🌹☘ ---

5 इन्द्रियाँ

• स्पर्शेन्द्रिय - इस इन्द्रिय से पुद्गल में रहे स्पर्श गुण का बोध होता है ।

• रसनेन्द्रिय - रसनेन्द्रिय अर्थात् जीभ । इस इन्द्रिय से पुद्गल में रहे रस का बोध होता है ।

• घ्राणेन्द्रिय - घ्राणेन्द्रिय अर्थात् नाक । इस इन्द्रिय से पुद्गल में रहे गंध का बोध होता है ।

• चक्षुरिन्द्रिय - चक्षुरिन्द्रिय अर्थात् आँख । इस इन्द्रिय से पदार्थ में रहे रूप का बोध होता है ।

• श्रोत्रेन्द्रिय - श्रोत्रेन्द्रिय अर्थात् कान ! इस इन्द्रिय से पुद्गल में रहे शब्द विषय का बोध होता है ।

तीन बल
---🌹☘ 🌹☘ ---

• मनोबल - जिसके बल से जीव कुछ भी सोच सकता है, विचार कर सकता है, उसे मनोबल कहते हैं ।

• वचनबल - जिसके बल से जीव अपने विचारों को वाणी द्वारा व्यक्त कर सकता है, उसे वचनबल कहते हैं।

• कायबल - जीव की काया की शक्ति को कायबल कहते हैं ।

• आयुष्य - आयुष्य कर्म के उदय से जीव किसी भी गति या भव में जीवन जी सकता है । यह आयुष्य भी जीव का प्राण है । यह प्राण सभी जीवों का होता है । इस प्राण के नाश के साथ ही जीव की मृत्यु हो जाती है।

पाँच इन्द्रियों में से किसी 1-2 इन्द्रियों की हानि हो जाने से जीव की मृत्यु नहीं होती है परंतु आयुष्य की हानि हो जाय तो जीव को अवश्य मरना पड़ता है ।

• श्वासोच्छवास - श्वासोच्छवास यह प्राण भी सब जीवों को होता है । अपने जीवन को टिकाने के लिए हर जीव अवश्य श्वास लेता है ।

एकेन्द्रिय जीवों के चार प्राण, पृथ्वीकाय आदि पाँच एकेन्द्रिय जीवों के कुल चार प्राण होते हैं ।

(1) पाँच इन्द्रियों में से एक इन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय ।

(2) तीन बल में से एक बल-कायबल ।

(3) आयुष्य और श्वासोच्छवास ।

बेइन्द्रिय जीवों में छः प्राण - बेइन्द्रिय जीवों के छः प्राण होते हैं । बेइन्द्रिय जीवों में एक इन्द्रिय रसनेन्द्रिय और एक वचन बल की वृद्धि होती है ।

तेइन्द्रिय जीवों के सात प्राण - तेइन्द्रिय जीवों के सात प्राण होते हैं । बेइन्द्रिय जीवों की अपेक्षा तेइन्द्रिय जीवों में एक घ्राणेन्द्रिय अधिक होती है ।

चउरिन्द्रिय जीवों के आठ प्राण - चउरिन्द्रिय जीवों के आठ प्राण होते हैं । तेइन्द्रिय की अपेक्षा इन जीवों में एक चक्षुरिन्द्रिय अधिक होती है ।

असंज्ञी-संज्ञी पंचेन्द्रिय के प्राण

असन्नि सन्नि पंचिंदिएसु नव दस कमेण बोध्व्वा ।
तेहिं सह विप्पओगो, जीवाणं भण्णए मरणं ।।43।।

असन्नि = असंज्ञी (मन रहित)
सन्नि = मनवाले
पंचिंदिएसु = पंचेन्द्रियों में
नव = नौ
दस = दस
कमेण = क्रमशः
बोधव्वा = जानना चाहिए
तेहिं = उनके
सह = साथ
विप्पओगो = वियोग
जीवाणं = जीवों का
भण्णए = कहा जाता है ।
मरणं = मृत्य

भावार्थ – मन रहित और मन सहित पंचेन्द्रिय जीवों में क्रमशः नौ और दस प्राण होते हैं । उन प्राणों का वियोग होना, उसी को मरण कहा जाता है ।

विवेचन – संज्ञी अर्थात् मनवाले और असंज्ञी अर्थात् मन रहित । एकेन्द्रिय से लेकर चउरिन्द्रिय तक के जीव असंज्ञी ही होते हैं ।

पंचेन्द्रियों में कुछ मनवाले होते हैं और कुछ मन रहित भी होते हैं ।

जो मनवाले होते हैं वे संज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं और जो मन रहित होते हैं वे असंज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं ।

चउरिन्द्रिय की अपेक्षा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के एक इन्द्रिय श्रोत्रेन्द्रिय अधिक होती है ।

जो पंचेन्द्रिय प्राणी मन वाले होते हैं, उन्हें संज्ञी पंचेन्द्रिय कहते हैं, उनके सभी प्राण होते हैं । गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य, देवता और नारक ये सभी संज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं ।

मनुष्य के देह से अलग हुए मल, मूत्र आदि में अन्तर्मुहूर्त बाद ही असंख्य संमूर्च्छिम मनुष्य पैदा हो जाते हैं तो असंज्ञी होते हैं और उनके मन नहीं होने से उनके नौ प्राण ही होते हैं ।जीव के जो प्राण बतलाए हैं उन प्राणों के साथ वियोग होना, उसी को मरण कहा जाता है ।

एवं अणोर पारे, संसारे सायरम्मि भीमम्मि ।
पत्तो अणंत-खुत्तो, जीवेहिं अपत्त-धम्मेहिं ।।44।।

एवं = इस प्रकार
अणोर पारे = पार रहित
संसारे = संसार में
सायरम्मि = सागर में
भीमम्मि = भयंकर
पत्तो = प्राप्त किया है
अणंतखुत्तो = अनंत बार
जीवेहिं = जीवों द्वाराश
अपत्तधम्मेहिं = धर्म की प्राप्ति के अभाव में

भावार्थ - इस भयंकर संसार सागर में धर्म की प्राप्ति के अभाव में जीवों द्वारा अनंत बार मृत्यु प्राप्त हुई है ।

विवेचन – यह संसार अनादिकाल से है । इस संसार में जीव का अस्तित्व भी अनादिकाल से है । जब तक आत्मा का मोक्ष न हो जाय तब तक इस संसार में आत्मा को जन्म-मरण की पीड़ा सहन करनी पड़ती है ।

संसार में जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित ही है । इस जन्म-मरण चक्र में से छूटने का एक मात्र उपाय वीतराग कथित शुद्ध धर्म की आराधना ही है ।

जिन-जिन पुण्यशाली आत्माओं ने इस धर्म की आराधना की, वे आत्माएँ जन्म-मरण के चक्र में से सर्वथा मुक्त हो गईं परंतु जिनको इस धर्म की प्राप्ति नहीं हुई अथवा जिन्होंने इस धर्म की अच्छी तरह से आराधना नहीं की, वे आत्माएँ इस संसार-सागर में भटकती रही हैं ।

संसार में राज्य की प्राप्ति, धन की प्राप्ति, सांसारिक भोग-सुखों की प्राप्ति या देवलोक के दिव्य सुखों की प्राप्ति दुर्लभ नहीं है, परंतु वीतराग कथित सद्धर्म की प्राप्ति तो अत्यंत दुर्लभ है ।

सद्धर्म की प्राप्ति के अभाव में आत्मा के भव भ्रमण का अंत कदापि संभव नहीं है, अतः जो आत्मा भवभ्रमण से थक चुकी है अथवा भव के भ्रमण का अंत लाना चाहती हैं उन्हें वीतराग कथित धर्म की अवश्य आराधना करनी चाहिए ।

भवभ्रमण का अंत लाने का एक मात्र सामर्थ्य वीतराग धर्म की आराधना में ही है, अतः महान् पुण्योदय से ऐसे सर्वश्रेष्ठ धर्म की प्राप्ति हो गई है तो प्रमाद छोड़कर उसकी आराधना कर लेनी चाहिए ।

योनि द्वार

तह चउरासी लक्खा संखा जोणीण होइ जीवाणं ।
पुढवाइओ चउण्हं, पत्तेयं सत्त सत्तेव ।।45।।

तह = तथा
चउरासी = चौरासी
लक्खा = लाख
संखा = संख्या
जोणीण = योनियों की
होइ = होती है
जीवाणं = जीवों की
पुढवाइओ = पृथ्वीकाय आदि
चउण्हं = चार
पत्तेयं = प्रत्येक की
सत्त = सात
सत्तेव = सात ही

भावार्थ – जीवों की योनियों की संख्या 84 लाख है पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय की 7-7 लाख योनियाँ है ।

विवेचन – जीव की उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं । जिस प्रकार तपा हुआ लोहे का गोला पानी के जलबिंदुओं को चूस लेता है, उसी प्रकार अपने पूर्व शरीर को छोड़कर उत्पत्ति के नए स्थल में जीव अपने शरीर की रचना के लिए योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है । जीव की उत्पत्ति के उस स्थल को योनि कहते हैं ।

योनि के मुख्य 9 भेद हैं

(1) सचित्त योनि - जीववाली योनि को सचित्त योनि कहते हैं । उदाहरण- जीवित मनुष्य के शरीर में पैदा हुए कृमि आदि कीड़े ।

(2) अचित्त योनि - जीव रहित योनि को अचित्त योनि कहते हैं । उदाहरण - सूखी लकड़ी में उत्पन्न कीड़े ।

(3) सचित्त-अचित्त योनि - सचित्त-अचित्त के मिश्रणवाली योनि को सचित्त-अचित्त योनि कहते हैं । जैसे मनुष्य की योनि में जो शुक्र-रक्त आदि के पुद्गल आत्मप्रदेश से संबद्ध हों वे सचित्त कहलाते हैं और जो संबद्ध न हों, वे अचित्त कहलाते हैं । ऐसी योनि सचित्त- अचित्त योनि कहलाती है ।

(4) शीत योनि - जिस योनि का स्पर्श ठंडा हो, उसे शीत योनि कहते हैं ।

(5) उष्ण योनि - जिस योनि का स्पर्श गर्म हो, उसे उष्ण योनि कहते हैं ।

(6) शीतोष्ण योनि - जिस योनि का स्पर्श न ज्यादा ठंडा हो, न ज्यादा गर्म हो, उसे शीतोष्ण योनि कहते हैं ।

(7) संवृत्त योनि - जो योनि ढकी हुई हो उसे संवृत्त योनि कहते हैं। जैसे - देवता की शय्या वस्त्र से ढकी होती है ।

(8) विवृत योनि - जो योनि खुली हो, उसे विवृतयोनि कहते हैं । जैसे - जलाशय में उत्पन्न जीवों की योनि ।

(9) संवृत्त-विवृत योनि - जो योनि कुछ अंश में ढकी हो और कुछ अंश में खुली हो, उसे संवृत्त-विवृत योनिकहते हैं । जैसे - मनुष्य की योनि ।

जीवों की योनियाँ

(1) एकेन्द्रिय से लेकर चउरिन्द्रिय जीव, संमूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय व संमूर्च्छिम मनुष्य की योनि सचित्त, अचित्त व सचित्त-अचित्त तीनों होती है ।

(2) गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच व मनुष्य की योनि मिश्र ही होती है ।

(3) भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष तथा वैमानिक देवों की तथा नारकों की योनि अचित्त ही होती है ।

मनुष्य-स्त्री योनि के तीन प्रकार

(1) कूर्मोन्नत योनि - कछुए की पीठ की तरह जो योनि हो उसे कूर्मोन्नत योनि कहते हैं । अरिहंत, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव की माता की योनि कूर्मोन्नत योनि होती है ।

(2) शंखावर्त योनि - शंख के आवर्त की तरह जो योनि हो, उसे शंखावर्त योनि कहते हैं । चक्रवर्ती के स्त्रीरत्न की योनि शंखावर्त होती है ।

(3) वंशीपत्र योनि - बाँस के दो संयुक्त पत्र के आकार वाली योनि को वंशीपत्र योनि कहते हैं । उपर्युक्त दो को छोड़ अन्य स्त्रियों की योनि, वंशीपत्र योनी होती है ।

84 लाख योनियाँ

यद्यपि जीवों के उत्पत्ति स्थान असंख्य हैं, परंतु स्पर्श, गंध, वर्ण आदि समानता के अनुसार योनियों के 84 लाख प्रकार बतलाए हैं । इस गाथा में पृथ्वीकाय आदि की योनियाँ बतलाई हैं ।

पृथ्वीकाय की 7 लाख योनियाँ हैं ।
अप्काय की 7 लाख योनियाँ हैं ।
तेउकाय की 7 लाख योनियाँ हैं ।
वायुकाय की 7 लाख योनियाँ हैं ।

दस पत्तेय तरूणं चउदस लक्खा हवंति इयरेसु ।
विगलिंदिएसु दो दो चउरो पंचिंदि-तिरियाणं ।।46।।

दस = दश लाख
पत्तेय तरूणं = प्रत्येक वनस्पतिकाय
चउदस लक्खा = चौदह लाख
हवंति = होते हैं
इयरेसु = इतर (साधारण वनस्पति)
विगलिंदिएसु = विकलेन्द्रियों में
दो-दो = दो दो
चउरो = चार
पंचिंदि = पंचेन्द्रिय
तिरियाणं = तिर्यंचों की

भावार्थ – प्रत्येक वनस्पतिकाय की 10 लाख, साधारण वनस्पतिकाय की 14 लाख, विकलेन्द्रिय जीवों में प्रत्येक की दो-दो पंचेन्द्रिय तिर्यंच की चार लाख योनियाँ हैं ।

विवेचन –
काय- प्रत्येक वनस्पतिकाय
योनि संख्या- 10 लाख

काय- साधारण वनस्पतिकाय
योनि संख्या- 14 लाख

काय- दो इन्द्रिय जीव
योनि संख्या- 2 लाख

काय- तीन इन्द्रिय
योनि संख्या- 2 लाख

काय- चार इन्द्रिय जीव
योनि संख्या- 2 लाख

काय- तिर्यंच पंचेन्द्रिय
योनि संख्या- 4 लाख

चउरो चउरो नारय-सुरेसु मणुआण चउदस हवंति ।
संपिंडिआ य सव्वे चुलसी लक्खा उ जोणीणं ।।47।।

चउरो चउरो = चार चार
नारय = नारक
सुरेसु = देवता में
मणुआण = मनुष्य की
चउदह = चौदह
हवंति = होती हैं
संपिंडिआ = इकट्ठा करने पर
य = और
सव्वे = सभी
चुलसी = चौरासी
लक्खा = लाख
उ = और
जोणीणं = योनियों का

भावार्थ – नारक और देवों की 4-4 लाख तथा मनुष्य की लाख योनियों हैं । सब मिलाकर 84 लाख योनियाँ होती हैं ।

विवेचन –
जीव - नारक
योनि - 4 लाख

जीव - देव
योनि - 4 लाख

जीव - मनुष्य
योनि - 14 लाख

इस प्रकार ये सब मिलकर कुल 84 लाख योनियाँ होती हैं ।

सिद्धाणं नत्थि देहो, न आउ कम्मं न पाण-जोणीओ ।
साइ अणंता तेसिं, ठिई जिणिंदागमे भणिया ।।48।।

सिद्धाणं = सिद्धों के
नत्थि = नहीं है
देहो = शरीर
न = नहीं
आउकम्मं = आयुष्य कर्म
न = नहीं
पाण जोणीओ = प्राण और योनि
साइ = सादि
अणंता = अनंत
तेसिं = उनकी
ठिई = स्थिति
जिणिंदागमे = जिनेश्वर के आगम में
भणिया = कही गई है ।

भावार्थ – सिद्ध भगवंतों को देह नहीं है, आयुष्य कर्म नहीं है, प्राण और योनि नहीं हैं । उनकी स्थिति सादि -अनंत हैं, ऐसा जिनेश्वर के आगम में कहा गया है ।

विवेचन– सर्वज्ञ-सर्वदर्शी जिनेश्वर भगवंतों ने अपने केवलज्ञान के बल से देखकर जगत् का जो स्वरूप बतलाया है, उसी स्वरूप का वर्णन जिन आगमों में देखने को मिलता है । अर्थात् जिन आगमों में जो कुछ भी कहा गया है, वह जिनेश्वर भगवंतों के द्वारा प्रत्यक्ष देखा हुआ ही कहा गया है, अतः उनमें असत्य का कहीं अंश भी नहीं है ।

जिन-आगमों की वाणी यह परमात्मा की साक्षात् वाणी है अर्थात् वह पूर्णरूप से श्रद्धा करने योग्य है ।

उन जिनागमों में कहा गया है कि सिद्ध भगवंतों के राग-द्वेष रूप भाव कर्मों का अभाव होने से उनके शरीर भी नहीं है । शरीर का अभाव होने से उनके कोई आयुष्य कर्म भी नहीं है । सिद्धों के शरीर का अभाव होने से प्राण और योनि भी नहीं है ।

उनकी स्थिति अर्थात् अस्तित्व सादि-अनंत है ।

यद्यपि मोक्ष का अस्तित्व अनादि अनंत है, फिर भी किसी व्यक्तिगत सिद्ध की अपेक्षा से निर्वाणपद प्राप्त करने पर उस आत्मा का सिद्ध पद प्रारंभ होगा, परंतु वह पद अनंत काल तक रहेगा ।

मोक्ष में गई आत्मा का अब पुनः संसार में आगमन नहीं है । उसका पुनः जन्म नहीं, मरण नहीं है । मुक्तात्मा की सदा काल के लिए एक ही स्थिति है । उसके स्वरूप में कभी भी, कुछ भी परिवर्तन आनेवाला नहीं है ।

अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अव्याबाध सुख, वीतरागता, अक्षयस्थिति, अरूपता, अगुरुलघुता एवं अनंतवीर्य गुण के धारक ऐसे सिद्ध भगवंतों को कोटि-कोटि वंदन हो ।

काले अणाइ निहणे, जोणि गहणम्मि भीषणे इत्थ ।
भमिया भमिहिंति चिरं जीवा जिणवयणमलहंता ।।49।।

काले = काल में
अणाइ निहणे = अनादि निधन
जोणि = योनि
गहणम्मि = गहन
भीसणे = भयंकर
इत्थ = यहाँ
भमिया = भ्रमण किया है
भमिहिंति = भ्रमण करेगा
चिरं = दीर्घकाल तक

जीवा = जीव
जिणवयणं = जिनवचन
अलहंता = प्राप्त नहीं होने से ।

भावार्थ – जिनेश्वर देव के वचन को प्राप्त नहीं किए हुए जीव, योनियों से गहन और भयंकर इस संसार मेंअनादि निधन ऐसे काल प्रवाह में लंबे समय तक भटका है और भटकेगा ।

विवेचन – यह संसार अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगा । इस संसार में आत्मा का अस्तित्व भी अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगा । संसार में आत्मा और कर्म का संयोग भी अनादिकाल से है।

इस संसार में आत्मा राग-द्वेष के अशुभ भाव कर-करके नए-नए कर्मों का बंध करती रहती है । उन कर्मों के उदय से आत्मा इस संसार में नए-नए जन्म धारण करती रहती है...और 84 लाख योनियों में जहाँ-तहाँ भटकती रहती है । एक जन्म से दूसरा जन्म, एक योनि से दूसरी योनि, इस प्रकार अनादिकाल से आत्मा संसार में भटकती रहती है । आत्मा के उस भटकाव का अंत लाने का एक मात्र उपाय जिन-वचन की आराधना, उपासना ही है ।

जिन-जिन पुण्यात्माओं ने जिनवचन की आराधना- उपासना की, वे आत्माएँ जल्दी ही संसार के भव-भ्रमण से सदा काल के लिए मुक्त हो गईं, परंतु जिन आत्माओं को अभी तक जिनवचन की प्राप्ति नहीं हुई, वे आत्माएँ इस भीषण संसार में जहाँ-तहाँ भटकती रही हैं ।

जिनवचन की प्राप्ति भी एकदम सुलभ नहीं है । किसी पुण्यवंत आत्मा को ही पुण्योदय से इस जिनवचन की प्राप्ति होती है ।

ता संपइ संपत्ते मणुअत्ते दुल्लहे वि संमत्ते ।
सिरि संति सूरि सिट्ठे, करेह भो उज्जमं धम्मे ।।50।।

ता = अतः
संपइ = अभी
संपत्ते = प्राप्त हुआ है तो
मणुअत्ते = मनुष्यपना
दुल्लहे = दुर्लभ
वि = भी
संमत्ते = सम्यक्त्व
सिरि = श्री
संतिसूरि = शांतिसूरि
सिट्ठे = उपदिष्ठ
करेह = करो
भो = हे
उज्जमं = उद्यम
धम्मे = धर्म में

भावार्थ – हे भव्यात्माओं ! जब दुर्लभ ऐसा मनुष्य भव और सम्यक्त्व प्राप्त हुआ है तो ज्ञानश्री और उपशम आदि गुणों से विभूषित ऐसे पूज्यश्री के द्वारा उपदिष्ट धर्म में उद्यम करो ।

विवेचन - हे भव्यात्माओं !
महान् पुण्योदय से तुम्हें यह मनुष्य भव और सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है ।
इस संसार में जीवों की संख्या अनंतानंत है ।
पृथ्वीकाय के कुल जीव असंख्य हैं ।
अप्काय के कुल जीव असंख्य हैं।
तेउकाय के कुल जीव असंख्य हैं ।
वायुकाय के कुल जीव असंख्य हैं ।
प्रत्येक वनस्पतिकाय के कुल जीव असंख्य हैं ।
बेइन्द्रिय के कुल जीव असंख्य हैं ।
तेइन्द्रिय के कुल जीव असंख्य हैं ।
चउरिन्द्रिय के कुल जीव असंख्य हैं ।
नारक के कुल जीव असंख्य हैं ।
देवता के कुल जीव असंख्य हैं ।
पंचेन्द्रिय तिर्यंच के कुल जीव असंख्य हैं ।
संमूर्च्छिम मनुष्य के कुल जीव असंख्य हैं ।
साधारण वनस्पतिकाय के कुल जीव अनंत हैं ।
जबकि गर्भज मनुष्य के कुल जीव संख्यात ही हैं ।

इस प्रकार विचार करते हैं, तब पता चलता है कि मनुष्य जन्म कितना दुर्लभ है।

मनुष्य मरकर 24 दंडकों में जा सकता है, जबकि तेउकाय और वायुकाय को छोड़कर सभी 22 दंडक के जीव मरकर मनुष्य भव प्राप्त कर सकते हैं ।

मनुष्य मर्यादित संख्या में हैं, जबकि इसको प्राप्त करने वाले उम्मीदवार अनंतजीव हैं ।

जिस प्रकार लाटरी खरीदनेवाले बहुत होते हैं, परंतु वह लॉटरी तो किसी एक को ही लगती है, उसी प्रकार मनुष्य भव के उम्मीदवार तो बहुत से जीव हैं, परंतु वह किसी पुण्यशाली को प्राप्त होता है ।

देवलोक में असंख्य देवता हैं परंतु अगले जन्म में उनको भी मनुष्य भव सुलभ नहीं है । अधिकांश देवता भी मरकर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय रूप एकेन्द्रिय में चले जाते हैं । उनके लिए भी मनुष्य भव की प्राप्ति सुलभ नहीं है । मनुष्य भव की प्राप्ति के बाद भी सम्यक्त्व की प्राप्ति सुलभ कहाँ है ?

सम्यक्त्व के अभाव में घोर पापाचरण करके अधिकांश मनुष्य भी मरकर नरक व तिर्यंच गति में चले जाते हैं । मिथ्यात्व का ही यदि पोषण होता हो तो उसके लिए तो यह मनुष्य भव भी दुर्गति स्वरूप ही है, क्योंकि मिथ्यात्व की उपस्थिति में वह आत्मा हिंसा आदि पाप भी अत्यंत निर्दयता पूर्वक करती है और और उन पापों का आचरण कर वह अपने भावि अनर्थ की लंबी परंपरा खड़ी देती है।

एसो जीववियारो संखेव रुइण जाणणा हेउं ।
संखित्तो उद्धरिओ, रुद्दाओ सुय-समुद्दाओ ।।51।।

एसो = यह
जीववियारो = जीवविचार
संखेव रुइण = संक्षेप रुचिवाले
जाणणा हेउं =जानने के हेतु से
संखित्तो = संक्षेप से
उद्धरिओ = उद्धार किया है
रुद्दाओ = अपार
सुय-समुद्दाओ = श्रुत समुद्र में से

भावार्थ– अतिविस्तृत ऐसे श्रुतसमुद्र में से संक्षेप करके, यह जीव विचार, नाम का प्रकरण ग्रंथ संक्षेप रुचिवाले जीवों के लिए मैंने रचा है ।

विवेचन - 50 गाथाओं के माध्यम से जैन दर्शन को मान्य जीवों के स्वरूप के वर्णन की समाप्ति करते हुए ग्रंथकार महर्षि प्रस्तुत-अंतिम गाथा में जीवविचार प्रकरण ग्रंथ का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि मैंने अपनी मति-कल्पना के आधार पर इस ग्रंथ की रचना नहीं की है, बल्कि श्रुतरूपी जो महासागर है, उसमें डुबकी लगाकर मैंने इस प्रकरण-ग्रंथ की रचना की है ।

जैन दर्शन में स्वच्छंद मति को कुछ भी स्थान नहीं है ।

सच्चा जैन भी वो ही कहलाता है जो जैन मत को मान्य वचन का ही उच्चारण करता है, जैनाचार्य वीतराग-सिद्धांत को मान्य आचार, विचार और उच्चार को ही स्वीकार करते हैं । वे कभी जैन मत से विपरीत आचार-विचार और उच्चार नहीं करते हैं ।

प्रकरण ग्रंथों की रचना दो प्रकार से होती है, संक्षेप में और विस्तार से ।

सभी मनुष्यों के क्षयोपशम एक समान नहीं होते हैं । कुछ जीव ऐसे होते हैं, जिन्हें किसी पदार्थ का वर्णन संक्षेप से ही समझाया जा सकता है । संक्षेप रुचिवाले जीवों को खूब विस्तार से समझाया जाय तो उन्हें कंटाला आता है, उन्हें कुछ समझ में भी नहीं आता है और उन्हें जिनवचनों के प्रति ही अरुचिभाव पैदा हो जाता है ।

परंतु कुछ जीव विस्तृत रुचिवाले भी होते हैं । विस्तार रुचिवाले जीवों को किसी भी पदार्थ का वर्णन विस्तार से ही करना पड़ता है । विस्तार रुचिवाले जीवों को संक्षेप में समझाया जाय तो भी उन्हें समझ में नहीं आता है और संक्षेप रुचिवाले जीवों को विस्तार से समझाया जाय तो भी समझ में नहीं आता है ।

प्रस्तुत ग्रंथ संक्षिप्त रुचिवाले जीवों के लिए है, क्योंकि इस प्रकरण में बहुत ही संक्षेप में जीवों का स्वरूप समझाया गया है। ग्रंथकार महर्षि ने संक्षिप्त रुचिवाले जीवों को नजर समक्ष रखकर ही प्रस्तुत ग्रंथ की रचना की है ।

जीव-विचार विवेचन प्रस्तुति में श्री जिनाज्ञा के विरूद्ध कुछ भी जाने अनजाने में त्रुटि हुई हो तो उसके लिए मैं अन्तःकरण से क्षमायाचना करता हूँ ।

--- ✿❀✿❀✿❀ ---

संयोजक
जैन उत्तम पी. कानूंगा अहमदाबाद (गढ़सिवाना)

संकलनकर्ता
जैन नीतेश बोहरा रतलाम (म. प्र.)
M. N. 87709 21106

प्रस्तुति
सुरेश चन्द्र बोरदिया भीलवाड़ा
M. N. 94138 63502